संत ग्रन्थमाला पुष्प 1

राम-चरित-मानस

सुन्दर-काण्ड

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश् च महीतले ।
तावद् रामायणी गाथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥ (वाल्मीकि)

भाषानुवाद, टिप्पण तथा परिशिष्टों सहित

सम्पादक

साधुराम एम० ए०
किनेर्ड कालेज फॉर विमन
लाहौर

तथा

सीताराम एम० ए०
विश्वेश्वरानन्द रिसर्च इन्स्टीट्यूट
लाहौर

Published by
Mr. S. R. Sehgal
Sant Nagar, Lahore.

Price Rs. 2/- मूल्य २) रु०

Printed by
Surendra Kumar Kapoor
at the Panch Nad Press, Ltd.
56, Paisa Akhbar Street, Lahore.

गोस्वामी तुलसीदासजी

भक्त-कवि तुलसीदासजी का जन्म उस काल में हुआ जब भारतवर्ष घर की फूट से नाशोन्मुख हो रहा था। विदेशियों की कूटनीति हिन्दुओं में से जातीय तथा राष्ट्रीय भावनाएँ नष्ट कर रही थी। हिन्दू-समाज संप्रदायों तथा पंथों में विभक्त होने के कारण अग्रसर होने में असमर्थ था। त्याग, जप, तप तथा सर्व-भूत-हित-साधना आदि भारतीय लोकोत्तर आदर्श स्वप्न हो रहे थे। इस समय अधः-पतित राष्ट्र को उठाने के लिये पीयूष-वर्षी मेघ की भाँति भक्त-कवि-सम्राट् तुलसीदासजी का जन्म हुआ।

गोस्वामीजी की जीवनी के विषयमें कुछ निश्चत-रूप से नहीं कहा जा सकता। संस्कृत कवियों की भाँति इन्होंने भी अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। भक्त-परम्परा से ज्ञात होता है कि तुलसीदासजी संवत् १५८९ में राजपुर के किसी दरिद्र ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम आत्माराम तथा माता का नाम हुलसी था। ये जन्म से अनाथ थे क्योंकि माता-पिता ने जन्मते ही इन्हें छोड़ दिया था। इस हृदय-विदारक घटना का ज्ञान कवि की कवितावली के निम्न-लिखित पद्य से होता है—

मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधिहूँ न लिखी कछु भाग भलाई।

इनका पहला नाम राम बोला था। पाँच वर्ष की अवस्था में इनकी पालिका 'मालिका' का देहान्त हो गया। तदनन्तर इन के गुरु बाबा नरहरिदास ने इन्हें अपने आश्रम में स्थान दिया और वहां इन्होंने रामायण की कथा पहली बार सुनी।

इन्होंने काशीमें में पंचगंगा-घाट-वासी परम विद्वान् शेष-सनातन जी से वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, पुराण, भागवत, आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। शिक्षा के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए। गोस्वामीजी अपनी स्त्री पर इतने मोहित हुए कि एक बार उनके मायके चले जाने पर ये बहते हुए शव पर ठाठें मारती हुई नदी पार करके और छत परसे लटकते हुए साँप के सहारे ससुराल वालों के घर पर चढ़कर उससे जा मिले। स्त्री ने उस समय उन से कहा :—

लाज न लागत आप को दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौं श्री राम महुं होति न तौ भव-भीति॥

इन शब्दों ने कवि को गृहस्थाश्रम से पराङ्-मुख कर दिया। तुलसीदासजी साधु बन गए। देशाटन करने लगे।

इन्होंने संवत् १६३१ में अयोध्या में राम-चरित-मानस (रामायण) की रचना आरम्भ की। दो वर्ष और सात महीनों में इन्होंने इसकी पूर्ति की। कहा जाता है कि संवत् १६८० में तुलसीदासजी काशी में महामारी और विषूचिका से ग्रस्त होकर स्वर्ग-धाम को सिधार गए।

उनकी बारह प्रशस्त कृतियों में विनय-पत्रिका तथा कवितावली के नाम उल्लेखनीय हैं। गोस्वामीजी ने रामायण की रचना स्वान्तः सुखाय की थी, किसी की प्रेरणा से नहीं की थी। उनका सिद्धांत था कि मनुष्य की स्तुति तथा संतुष्टि के लिये काव्य लिखना सरस्वतीजी का अपमान करना है। तो भी इनकी कविता भक्ति-रसके साथ २ राष्ट्र को उठाने की भावना भी लिये हुए थी।

कवि के हृदयोद्गारों ने निराश और निरालम्ब जनता में जागृति तथा स्फूर्ति उत्पन्न की। राजा से रङ्क तथा बाल से वृद्ध तक को इसका रसास्वादन हुआ, और हो रहा है। संस्कृत-साहित्य में जो स्थान गीता को प्राप्त है वही स्थान हिन्दी-साहित्य में राम-चरित-मानस को प्राप्त है। हिन्दू घरों में गीता और रामायण का पाठ धार्मिक रूप से प्रतिदिन होता है। साप्ताहिक तथा मासिक पारायण पर्व तथा एकादशी-व्रत के दिनों में प्रसिद्ध हैं। हनुमानजी के हृदय-पटल पर जैसे राम नाम अङ्कित था वैसे ही आजकल हिन्दू घरों में रामयण की छाप है। रामायण के विषय में आदि-कवि श्रीवाल्मीकिजी के शब्द अमर हैं :—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणी गाथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

अर्थात् जब तक पर्वत और नदियां पृथ्वी पर विद्यमान हैं तब तक लोगों में रामायण की कथा का प्रचार होता रहेगा।

तुलसीदासजी के राम-चरित-मानस का आधार वाल्मीकि-प्रणीत संस्कृत रामायण है। परन्तु भक्त-कवि की मौलिक छाप चमत्कारिक वर्णनों तथा उद्भावनाओं में पाई जाती है। सीताजी की खोज में हनुमानके लंका जाने की कथा तो वाल्मीकि रामायण में भी है, परन्तु सीताजी की शोक-विह्वल अवस्था में उनका अशोक के ऊपर से अँगूठी गिराना और सीताजी का उसे अंगार समझकर उठा लेना गोस्वामीजी की लोकोत्तर कल्पना है। इनके सूक्ष्म मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण की अद्भुत क्षमता मन्थरा में दीख पड़ती है। भरत का निःस्वार्थ चरित्र खड़ा करने और कैकेयी की आत्म-ग्लानि दिखलाने में गोस्वामीजी को स्वतंत्र पथ का अनुसरण करना पड़ा है। सुग्रीव तथा विभीषण

के चरित्रों से जितनी सहानुभूति उन्हें है उतनी वाल्मीकिजी को नहीं। इनके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्रजी तो तुलसीदासजी के इष्ट-देव हैं। उनकी भक्त-वत्सलता और शरणागत की रक्षा तो उनके स्वाभाविक गुण हैं। मनुष्य-रूप में उनके पितृ-भक्ति, उदारता, विनय, धैर्य और शील आदि गुण भी अपनी तुलना नहीं रखते। राजा के रूप में वे न्याय-शाली, प्रजा-पालक और वर्णाश्रम धर्म के व्यवस्थापक हैं। प्रजा को संतुष्ट रखने के लिये और उनके संमुख धर्म और गार्हस्थ्य का आदर्श उपस्थित करने के लिये उन्होंने अपने व्यक्ति-गत सुख को तिलाञ्जलि दे दी। लक्ष्मणजीके भ्रातृ-स्नेह, शौर्य और यौवन-सुलभ तीव्रता और क्रोधावेश के भी सुन्दर चित्र खैंचे हैं। सीताजी का पातिव्रत्य और अगाध प्रेम तथा हनुमानजी की स्वामि-भक्ति भी अनुपम हैं। किं बहुना, राम-चरित-मानस हमारे सामने हिंदू-समाज और सदाचार का सजीव आदर्श उपस्थित करता है। राम-चरित-मानस की एक विशेषता और है जिस से संसार भर के धर्म-ग्रन्थों में सबसे ऊँचा स्थान इसका है। वह है इसकी पवित्रता। इसमें अश्लीलता का लेश-मात्र भी नहीं। बाल-काण्ड में तुलसीदासजी लिखते हैं :—

अति खल जे बिषयी बक कागा। यहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
शंबुक भेक सिवार समाना। इहाँ न विषय-कथा-रस नाना॥
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥

भाषा

तुलसीदासजी के समय काव्य-धारा में दो भाषाएँ प्रचलित थीं। कृष्ण-भक्त कवियों ने ब्रज-विहारी-चरित्र गान के लिये ब्रज

प्रान्त की मधुर भाषा को अपनाया और इसी भाँति अवध-पति-राम-भक्तों के लिये अवधी भाषा का अपनाना स्वाभाविक था।

तुलसीदासजी का राम-चरित-मानस अवधी भाषा में लिखा हुआ है, किन्तु उसमें व्रज-भाषा का संमिश्रण है और कहीं कहीं अन्य प्रान्तों की बोलियों की पुट भी देखने को मिलती है। गोस्वामीजी आवश्यकता अनुसार विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के शब्दों को स्वीकार करने में संकोच नहीं करते।

शैली

पं० रामचन्द्रजी शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के १६१ पृष्ठ पर लिखते हैं :—

"भाषा-पद्य के स्वरूप को लेते हैं तो गोस्वामीजी के सामने कई शैलियां प्रचलित थीं जिन में से मुख्य ये हैं—(क) वीर-गाथा काल की छप्पय-पद्धति, (ख) विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति, (ग) गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया-पद्धति, (घ) कबीर दास की नीति-संबंधी बानी की दोहा-पद्धति जो अपभ्रंश काल से चली आती थी, और (ङ) ईश्वरदास की दोहे-चौपाई वाली प्रबंध-पद्धति। इस प्रकार काव्य भाषा के दो रूप और रचना की पाँच मुख्य शैलियां साहित्य क्षेत्र में गोस्वामीजी को मिलीं। तुलसीदासजी के रचना-विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतो-मुखी प्रतिभा के बल से सब के सौन्दर्य की पराकष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्य क्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए।"

गोस्वामीजी ने राम-चरित-मानस में दोहे-चौपाई की पद्धति का अनुसरण किया है। कहीं कहीं छन्दों के प्रयोग ने भाव-धारा में तीव्रता भी पैदा की है।

संस्कृत की 'कान्त-कोमल-पदावली' ने भाषा में और भी आकर्षण तथा सजीवता का रस सींचा है। रावण—अङ्गद, मन्थरा—कैकेयी और लक्ष्मण—परशुराम आदि के संवाद नाटकीय छटा से आभासित हैं। भाव और भाषा के अनुकूल कवि की शैली में भेद पाया जाता है, जैसे 'घन घमंड नभ गर्जत घोरा' की शब्दावली ऐसी है जिसमें बादल की गर्ज की प्रतिध्वनि मिलती है। 'चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहँग नचत मन मोरा' में कोयल, पपीहे आदि की चहचह सुनाई पड़ती है। 'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि' में घुंघुरुओं और पायल की झंझनाहट है और—

गए क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुति मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥

ऊपर के पद्य के शब्दों में युद्ध का ओज और रौद्र-रस टपकते हैं। इनकी कविता में कई उक्तियाँ इतनी सुन्दर और प्रिय हैं कि वे लोकोक्तियाँ ही बन गई हैं, जैसे—

१. होइ है वही जो राम रचि राखा।

२. मन मोदक नहीं भूख बुताई।

३. पराधीन सपने सुख नाहीं।

४. कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

५. जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं बिलोकत पातक भारी।

परन्तु कहीं कहीं इनकी शैली में दोष भी आगया है, जैसे अशोक-वाटिका के वर्णन में विप्रलंभ-शृङ्गार-पूर्ण बातों से श्रोता का मन अधिक उद्विग्न होता है।

रामायण का व्याकरण

व्याकरण भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन है। भाषा को वैज्ञानिक ढंग से समझने के लिए उसके प्रत्येक अंगका जानना

आवश्यक है। इस लिये हम अवधी भाषा के व्याकरण की विशेषताओं पर कुछ प्रकाश डालते हैं।

संज्ञा

संज्ञाएँ चार प्रकार की होती हैं—(१) जाति-वाचक, (२) व्यक्ति-वाचक, (३) समुदाय-वाचक और (४) भाव-वाचक।

व्यक्ति-वाचक संज्ञाएँ बहुत सी ऐसी हैं जिन्हें हम गुण-वाचक विशेषण भी कह सकते हैं और जिनका प्रयोग संज्ञा के रूप में हुआ है। एक गुण-वाचक शब्द के अनेक प्रर्याय होने के कारण एक व्यक्ति के अनेक नाम मिलते हैं, जैसे—श्रीरामचन्द्रजी के 'रघुबीर, रघु-बर, रघु-पति, सीता-पति, भानु-कुल-नाथा' और रावण के 'दस-सीस, दस-कंधर, दसानन', इत्यादि।

समुदाय-वाचक संज्ञाओं के लिये, 'गन, समूह, समाज, बरूथ, जूथ, निकाय, श्रेनी, ग्रामा' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भाव-वाचक संज्ञाएँ बनाने के लिये 'त्व, ता, य, अ' आदि संस्कृत प्रत्ययों और 'आई, पन, पौ, प, ई' आदि प्राकृत अर्थात् तद्भव और देशीय प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है, जैसे—प्रभु से प्रभुत्व, प्रभुता; सुन्दर से सौंदर्य; सिसु से सैसव; पुरुष से पौरुष; बड़ से बड़ाई; हरुअ से हरुआई; अपना से अपन-पन, अपनपौ; सयाना से सयानप; भाई से भायप; रखवार से रखवारी; इत्यादि। कई बार सभी भाँति की संज्ञाओं के साथ योंही अथवा पाद-पूर्ति के लिये 'आई' अधिक जोड़ दिया जाता है, जैसे—प्रभुताई, सरनाई, कटकाई। 'अन, अव, नि, एं' आदि प्रत्यय लगाकर बनाई हुई क्रियार्थक संज्ञाएँ (verbal nouns) भी भाव-वाचक ही होती हैं, जैसे—पयान, गवन, बरजन, उठव, रहनि, तोरैं, बोलैं, इत्यादि।

लिंग

आजकल की हिंदी की भाँति अवधी भाषा में भी केवल दो लिंग हैं—पुंल्लिग और स्त्री-लिंग। तुलसीदासजी ने लिंग के विषय में बड़ी मन-मानी की है। कई पुंल्लिग शब्दों को स्त्री और स्त्री-लिंग को पुंल्लिग में प्रयोग किया है। अतः इस विषय में यहाँ लिखना व्यर्थ है। प्रसंग से लिंग का स्वयमेव पता चल जाता है।

वचन

आधुनिक हिंदी की भाँति अवधी में भी दो वचन हैं—एक-वचन और बहु-वचन। कर्त्ता विभक्ति में संज्ञाओं के एक-वचन और बहु-वचन में साधारणतया कोई भेद नहीं, जैसे—'मधुर-बचन', 'सजल नयन', 'मधु-बन के फल'—इनमें मोटे शब्दों के रूप दोनों वचनों में एक से हैं। फिर भी जो थोड़ी बहुत विशेषताएँ हैं उनका व्योरा नीचे दिया जाता है :—

(१) कई स्थानों पर अकारांत पुल्लिग संज्ञाओं को कर्ता-विभक्ति (और कहीं कहीं कर्म) के एक-वचन में उकारांत बना दिया है, जैसे—'होइहि काजु', 'बल मरमु', 'तासु कपटु', 'कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा', इत्यादि।

(२) कई बार अकारांत तथा आकारांत पुंल्लिग शब्द की कर्ता-विभक्ति के बहुवचन में अंतिम 'अ' वा 'आ' को 'ए' हो जाता है, जैसे—पाहुन से पाहुने, रखवारा से रखवारे, आदि।

(३) ईकारांत स्त्री-लिंग शब्दों के कर्ता-विभक्ति के बहु-वचन में अंतिम 'ई' को अनुनासिक 'ईं' कर दिया है, जैसे—'मन्दोदरी आदि सब रानीं', 'बापीं सोहहीं'।

(४) जाति-वाचक संज्ञाओं के आगे 'निकर, गन, ग्रामा,

निकाया, व्राता' आदि समुदाय-वाचक शब्द लगाकर बहुवचन का काम लिया गया है, जैसे—निसिचर-निकर, अहि-गन, ब्रह्मांड-निकाया, खल-व्राता, आदि।

(५) कर्ता-विभक्ति को छोड़कर अन्य सभी विभक्तियों के एक-वचन में दोनों लिंगों के संज्ञा शब्दों के आगे 'हि' अथवा 'हिं' लगा दिया जाता है, जैसे—कपिहि, सीतहिं, रिपुहिं, आदि। और बहु-वचन में 'न, नि, न्ह, न्हि' आदि लगा दिये जाते हैं, जैसे—बातन, सुरन्ह, तपसिन्ह, बरूथन्हि, नयनन्हि, आदि।

सर्वनामों के वचन

कर्ता-विभक्ति में सर्वनामों के एक-वचन और बहु-वचन के रूप नीचे दिये जाते हैं :—

सर्वनाम	एक-वचन	बहु-वचन
प्रथम पुरुष	सो, वह	ते
मध्यम पुरुष	तूँ, तैं	तुम्ह
उत्तम पुरुष	मैं, हौं	हम
प्रश्न-वाचक	को, कवन, कवनि, का	के
संबंध-वाचक	जो	जो, जे
संकेत-वाचक	एह, यह	ए, ये

कर्ता-विभक्ति को छोड़कर अन्य विभक्तियों के रूप :—

प्रथम पुरुष	ता, ते, ओ, तेहि	तिन्ह, उन्ह
मध्यम पुरुष	तो, तोहि	तुम्ह
उत्तम-पुरुष	मो, मोहि	हम
प्रश्न-वाचक	का, के, केहि	किन्ह
संबंध-वाचक	जा, जे, जेहि	जिन्ह
संकेत-वाचक	या, ए, एहि	इन्ह

विभक्ति चिह्न

कर्ता विभक्ति में कोई चिह्न नहीं लगता।

बहुत से स्थलों पर तो कर्ता-कारक के रूप विना विभक्ति चिह्नों के ही शेष सभी विभक्तियों के लिये प्रयोग में आए हैं, जैसे—'रुधिर बमत, देखेउँ नयन, रघुपति विरह, मंदिर चढ़ धाई' इत्यादि में मोटे शब्द क्रम से कर्म, करण, संबंध और 'अधिकरण' के स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे प्रयोगों को छोड़कर शेष सभी स्थलोंपर संज्ञाओं और सर्वनामोंके आगे एक और बहुवचनमें भिन्न भिन्न विभक्तियोंके भिन्न भिन्न चिह्न लगाए जाते हैं। इन चिह्नोंको सम्बन्ध-बोधक अव्यय भी कहते है। वे ये हैं:—

कर्म	हि, हिं, ही, का, के, को, कौ, कहँ, कहुँ, आदि।
करण	तें, सैं, सन, पहिं, करि, आदि।
सम्प्रदान	हि, कहँ, कहुँ, आदि।
अपादान	तें, सैं, आदि।
सम्बन्ध	कर, केर, करि, केरि, कैं, केरे, का, के, (सर्वनामों में रा, रे, री)।
अधिकरण	हि, हिं, पर, पै, में, मों, महँ, माँहि, माँझ, आदि।

विभक्तियों के अर्थ में कभी कभी शब्द के अन्तिम स्वर को केवल अनुनासिक ही कर दिया जाता है, जैसे—घरनीं, कूपाँ, हृदयँ, लंकाँ, गएँ, बएँ, आदि।

क्रियाएँ

धातुओं के आगे निचले पटल में दिये प्रत्यय लगाने से भिन्न भिन्न कालों, प्रकारों, तथा पुरुषों के एक-वचन और बहु-वचन में रूप बनते हैं।

काल	पुरुष	प्रत्यय एक वचन	प्रत्यय बहु वचन	'कह' धातु के रूप एक वचन	'कह' धातु के रूप बहु वचन
वर्तमान काल	प्र०	अहि, अइहि, इ, अ	अहिं, अइँ हिं, इँ	कहहि, कहइ, कह	कहहिं
	म०	असि, सि, हि	अहु, हु	कहसि, कहहि	कहहु
	उ०	अउँ, उँ	अहिं, हिं, इहि	कहउँ	कहहिं, कहिहि
आज्ञा तथा विधि	प्र०	अउ, उ, अहि, अइ, हि, इ	हुँ, हिं	कहउ, कहहि, कहइ	कहहुँ, कहहिं
	म०	उ, असि, अहि, इ, सि, हि	अहु, हु	कहु, कहसि, कहहि	कहहु
	उ०	अउँ, उँ	अहिं, हिं	कहउँ	कहहिं
भविष्यत् काल	प्र०	ई, इहि	इहिं, इहहिं, इअहिं, इहइँ	कही, कहिहि	कहिहिं, कहिहहिं
	म०	इहसि	इहहु, इअहु	कहिहसि	कहिहहु
	उ०	इहउँ	इहहिं	कहिहउँ	कहिहहिं
भ० विधि	म०	एसु	एहु, एउ	कहेसु*	कहेहु, कहेउ

* इसका अर्थ है 'तूने करना'। इसे हम भविष्यत् काल की आज्ञा अथवा विधि कह सकते हैं।

भूत काल	प्र०	एसि, इसि, एउ,येउ	एन्हि,इन्हि	कहेसि, कहिस, कहेउ	कहेन्हि,कहिन्हि
	म०	एहि,इहि	एहु, इहु	कहेहि, कहिहि	कहेहु,कहिहु
	उ०	एउँ,येउँ,इउँ	एन्ह, एन्हि, इन्ह, इन्हि	कहेउँ, कहिउँ	कहेन्ह, कहेन्हि, कहिन्ह, कहिन्हि
हेतु-हेतुमद्-भूत	प्र०	त, ति	ते	कहत,कहति	कहते
	म०	तो	अतेहु,तेहु	कहतो	कहतेहु
	उ०	तेउँ,तेहुँ,त्यों, अतेउँ,अतेहुँ	ते	कहतेउँ,कहतेहुँ	कहते

(१) जहां विकल्प से दो अथवा दो से अधिक प्रत्यय हैं, उनमें से 'अकारादि' प्रत्यय व्यंजनांत धातुओं को लगते हैं और दूसरे स्वरांत धातुओं को। 'यकारादि' प्रत्यय केवल स्वरांत धातुओं को ही लगते हैं।

(२) 'अइ, अइँ' के स्थान पर 'ऐ, ऍं' और 'अउ, अउँ' के स्थान पर 'औ, औं' भी हो जाते हैं, जैसे—कहै, कहैं; कहौ, कहौं।

(३) कहीं कहीं क्रिया का मूल रूप ही तीनों कालों में तथा विधि अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जैसे—कह लंकेस कवन तैं कीसा, पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता, मोरे सन्मुख आव कि सोई।

(४) भविष्यत् काल के तीनों पुरुषों और दोनों वचनों के रूप विकल्प से 'ब, बि, बी' प्रत्यय लगाने से भी बनते हैं, जैसे—करब, मारबि, इत्यादि। 'गे, हुगे, हिंगे' आदि प्रत्ययों वाले रूप अवधी के नहीं।

संयुक्त क्रियाएँ

संयुक्त क्रियाएँ प्राय: कृदंतो के संयोग से बनाई जाती हैं। कृदंतो के साथ 'रहना, होना, लगना, आना, जाना, उठना, बैठना, लेना, देना, पाना, पड़ना, सकना, चाहना, आदि धातुओं के रूप सहायक क्रियाओं की भाँति प्रयुक्त होते हैं।

(१) वर्तमान-कालिक कृदंत के संयोग से, जैसे—कहत भयेऊ, चहत हहिं।

(२)भूत-कालिक कृदंत के संयोग से, जैसे—देखा चहहुँ, कीन्ह चहइ, उठावा चहहिं।

(३) पूर्व-कालिक कृदन्त के संयोग से, जैसे—बिसरि गा, राखि सकहिं, करि आए, लगाइ देहु, जीति सकहिं।

(४) क्रियार्थक संज्ञा के संयोग से, जैसे—जान दे, देइ नहिं जाना, बरजन लागे, तोरैं लागा, जरैं पाव, आदि।

प्रेरणार्थक क्रियाएँ

धातु के अंत में 'अव, आव, आरा' आदि जोड़ने से अथवा धातु के स्वर को गुण या वृद्धि करने से प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाई जाती हैं, जैसे—देखावहि, बैठावा, समुझाएहु, सुनाएहु, मिलवहिं, बाजहिं, जिआवा, बैठारा, आदि।

नाम-धातु

संज्ञा अथवा विशेषण आदि के आगे 'आना' लगाने से नाम-धातु बनाए जाते हैं, जैसे—बौराना, सकुचाना, कदराना, लुकाना, लपटाना, आदि। कहीं कहीं 'आव' प्रत्यय भी देखने में आता है, जैसे—सुन कपि बिहँसि बहरावा, ताहि अपनावा।

कृदंत

क्रिया के वे रूप जिन का प्रयोग संज्ञा, विशेषण, आदि शब्द-भेदों के समान होता है उनको कृदंत कहते हैं।

(१) वर्तमान-कालिक कृदन्त—यह व्यंजनांत धातुओं के आगे पुंल्लिंग में 'अत' और स्त्री-लिंग में 'अति' लगाने से बनता है, और स्वरान्त धातुओं के आगे क्रम से 'त, ति' लगाने से बनता है। स्त्री-लिंग में कभी कभी अंतिम 'इ' दीर्घ 'ई' कर दी जाती है। यथा—बिछुरत, तपत, जात, रहति, करति, इत्यादि।

इस कृदन्त का प्रयोग वर्तमान काल की क्रिया के रूप में भी होता है, जैसे—नहिं अघात, प्रेम न हृदय समात, कहति जानकी, जानत प्रिया एकु मनु मोरा। हेतु-हेतुमद्-भूत के अर्थ में भी आता है, जैसे—जौं न होति।

(२) भूत-कालिक कृदन्त—पुंल्लिंग में 'अ, न्ह, आ, वा' और स्त्री-लिंगमें 'ई, न्ही', आदि प्रत्यय लगानेसे बनता है, जैसे—लाग, दीख, कीन्ह, लीन्ह, मारा, पावा, गई, चली, पाई, दीन्ही। कभी कभी अंतिम 'ई' ह्रस्व हो जाती है, जैसे—दीन्हि।

इस कृदन्त का भी प्रायः भूत-कालिक क्रिया के रूप में प्रयोग होता है, जैसे—चले मरुत उनचास, चला सो तहाँ, हर को दंड भंजा, मद गंजा, उर लाए, प्रनाम कीन्ह

इस कृदन्त के अर्ध-तत्सम और तत्सम रूप भी मिलते हैं, जैसे—बिगत, पालित, मुंडित, कृत, आदि।

(३) पूर्व-कालिक कृदन्त—धातु के आगे 'इ' लगाने से बनता है, जैसे—खाइ, देखि, सुनि, जोरि, संभारि, आदि। कभी

कभी छन्द-पूर्ति के लिये 'इ' दीर्घ 'ई' हो जाती है, जैसे—निसिचरिन्ह बोलाई, त्रासहु जाई।

(४) क्रियार्थक-संज्ञाएँ—धातु के आगे 'न, अन, अव, ऐं', आदि लगाने से बनती हैं, जैसे—बरजन, भजन, मारन, मिलन, लेन, उठब, तोरैं, रचैं, । स्त्री-लिंग में 'नि' लगता है, जैसे—रहनि, करनि, आदि। छन्द के हेतु अन्तिम 'इ' दीर्घ भी हो जाती है, जैसे—कीन्ही जो करनी।

कर्तृ-वाचक संज्ञाएँ—धातु के आगे 'अन, अवारा, अनहारा, अनिहारा' आदि प्रत्यय लगाने से बनती हैं, जैसे—नसावन, समन, दलन, हरन, रखवारे, देखनिहारे, आदि।

कर्म-वाच्य

वर्तमान काल कर्म-वाच्य में धातु के आगे एक-वचन में 'इअ' और बहुवचन में 'इअत' अथवा 'इअहिं' प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे—देखिअत प्रगट गगन अंगारा, पयोधि बँधाइअ, सुजस गाइअ, सोखिअ सिंधु करिअ मन रोसा, पठइअ बंदर।

'इअ' के स्थान पर 'ईज' भी देखने में आता है, जैसे—कहा कीजे, जानकी दीजे, रावन कर दीजहु।

भूत तथा भविष्यत् काल में कर्म-वाच्य में कृदंत प्रयोगों से ही काम लिया जाता है। कर्म-वाच्य में भविष्यत्-कालिक कृदंत धातु के आगे 'व' प्रत्यय लगाने से बनता है। स्त्री-लिंग में 'बि' और 'इवि' हो जाता है, जैसे—आनिबि जानकी।

अव्यय

(१) क्रिया-विशेषण, जैसे— जहाँ, जहवाँ, जहँ तहँ, निकट, साथा, बाहेर, अब, आजु, तुरंता, फिरि, बहोरि, निरंतर, बार, निपट, सुठि, अतिसय, कछु, परसपर, अवसि, नाहीं, जनि, किन, इत्यादि ।

(२) स्थान-वाचक, जैसे—आगें, पीछें, मँझारि, बीच, ऊपर ।
(३) दिशा-वाचक, जैसे—ओर, दिसि, तन, इत्यादि ।
(४) हेतु-वाचक, जैसे—हित, लागी, लगि, कारन, आदि।
(५) व्यतिरेक-वाचक, जैसे—बिनु, बिना, बिहीन।
(६) सादृश्य-वाचक, जैसे—नाईं, सम, अनुहारी, अनुसारा।
(७) संयोजक—अरु ।
(८) विभाजक—अथवा, वा, कि, न–न, न त, नाहिं त।
(९) विरोध-दर्शक—पै, बरु ।
(१०) संकेत-वाचक—जौं–तौं, जदपि–तदपि ।
(११) स्वरूप-वाचक—मानहुँ, मनहुँ, मनौ, जनु ।
(१२) विस्मय-बोधक—अहो ।
(१३) हर्ष-बोधक—जय जय ।
(१४) खेद-बोधक—अहह, त्राहि त्राहि, हा ।
(१५) अनुमोदन-बोधक—भलेहिं, इत्यादि ।

सुन्दर-काण्ड

श्लोक—शान्तं शाश्वतम् अप्रमेयम् अनघं निर्वाण-शान्ति-प्रद
ब्रह्मा-शम्भु-फणीन्द्र-सेव्यमनिशं वेदान्त-वेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुर-गुरुं माया-मनुष्यं हरिं
वन्दे ऽहं करुणाकरं रघु-वरं भूपाल-चूडा-मणिम् ॥१॥

शान्त, सनातन, अनंत, निष्पाप, मुक्ति और शान्ति देने वाले, ब्रह्मा, शिव और शेषजी से निरन्तर सेवित, वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, संसार के स्वामी, देवताओं के गुरु, माया से मनुष्यरूप धारी, करुणा-निधान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि, राम कहलाने वाले हरि की मैं वन्दना करता हूँ ॥१॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदये ऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवान् अखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघु-पुङ्गव निर्भरां मे
कामादि-दोष-रहितं कुरु मानसं च ॥२॥

हे रघुनाथ जी ! मैं सत्य कहता हूँ, और फिर आप सब के अन्तरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं) कि मेरे हृदय में दूसरी कोई इच्छा नहीं है । हे रघुकुल-श्रेष्ठ ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिये और मेरे मन को काम आदि दोषों से रहित कीजिये ॥२॥

अतुलित-बल-धामं स्वर्ण-शैलाभ-देहं
दनुज-वन-कृशानुं ज्ञानिनाम् अग्र-गण्यम् ।

सकल-गुण-निधानं वानराणाम् अधीशं
रघुपति-वर-दूतं वात-जातं नमामि ॥३॥

अतुल बल के धाम, सोने के पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीर वाले, दैत्यरूपी वन को ध्वंस करने के लिये अग्निरूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, संपूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्रीरामचन्द्रजी के श्रेष्ठ दूत पवनपुत्र हनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥

जामवंत के सुन्दर वचन हनुमानजी के हृदय में बहुत अच्छे लगे।

तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥
जब लगि आवउँ सीतहिं देखी। होइहि काज मोहि हरष बिसेषी॥

उन्होंने सब वानरों से कहा—हे भाइयो, कंद, मूल और फल खाकर और दुःख सहनकर तुम सब तब तक मेरी बाट जोहना, जब तक मैं सीता जी को देखकर लौट आऊँ। काम सिद्ध हो जाएगा क्योंकि मेरे मन में बहुत प्रसन्नता हो रही है।

अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥

ऐसा कहकर, सब को मस्तक नवाकर, और हृदय में श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करके हनुमानजी प्रसन्न होकर चल दिये।

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बलभारी॥

समुद्र के किनारे सुन्दर नामक पर्वत था, हनुमानजी अनायास ही कूदकर उसके ऊपर चढ़ गए। बारंबार श्रीरामचन्द्रजी को स्मरण कर अत्यंत बल पूर्वक पवनपुत्र हनुमानजी कूदे।

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। तेही भाँति चलेउ हनुमाना॥

जिस पर्वत पर कूद कर पैर रखा, वह तुरंत ही पाताल में धँस गया। जैसे श्रीरघुनाथजी का अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमानजी चले।

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥

समुद्र ने उन्हें श्रीरघुनाथजी का दूत समझकर मैनाक पर्वत से कहा कि हे मैनाक! तू इन की थकावट दूर करने वाला हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे)।

सो०—सिंधुवचन उर आनि, तुरत उठेउ मैनाक तब।

कपि कहुँ कीन्ह प्रनाम, पुलकित तनु कर जोरि करि॥१॥

तब समुद्र के वचन सुनकर मैनाक प्रसन्न होकर तुरन्त उठा। उसका शरीर पुलकित था और उसने हाथ जोड़ कर हनुमानजी को प्रणाम किया।

दो०—हनुमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।

रामकाजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम॥२॥

हनुमानजी ने उसे हाथ से छू दिया, फिर प्रणामकर कहा भाई, श्रीरामचन्द्र जी का काम किये विना मुझे विश्राम कहाँ?

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा।

सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥

देवताओं ने पवनपुत्र हनुमानजी को जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धि की परीक्षा के लिये उन्होंने सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा। उसने आकर हनुमानजी से यह बात कही—

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥

रामकाजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥

तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥

आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमानजी ने कहा—श्रीरामजी का कार्य करके मैं

लौट आऊँ और सीताजी का समाचार प्रभु को सुना दूँ। तब मैं आकर तुम्हारे मुँह में घुस जाऊँगा [तुम ने मुझे खा लेना]। मैं सत्य कहता हूँ, हे माता! अभी मुझे जाने दो।

कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥

जब किसी भी उपाय से उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान-जी ने कहा—"तू मुझे खा क्यों नहीं लेती"?

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयेऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयेऊ॥

उसने योजन भर (चार कोस) मुँह फैलाया। हनुमानजी ने अपने शरीर को उससे दूना बढ़ा लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमानजी तुरंत ही बत्तीस योजन के हो गए।

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥

जैसे-जैसे सुरसा मुख का विस्तार बढ़ाती थी, हनुमानजी उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन का मुख किया। तब हनुमानजी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया।

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। माँगी बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥

और वे उसके मुख में घुसकर तुरंत फिर बाहर निकल आए और उससे सिर नवाकर विदा माँगने लगे। [उसने कहा—] मैंने तुम्हारे बुद्धि-बल का भेद पा लिया, जिसके लिये देवताओं ने मुझे भेजा था।

दो०—रामकाजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान॥३॥

तुम श्रीरामचन्द्रजी का सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम

बल-बुद्धि के भंडार हो, यह आशीर्वाद देकर वह चली गई। तब हनुमानजी प्रसन्न होकर चले।

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥

समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी।

जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥
गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥

आकाश में जो जीव-जन्तु उड़ा करते थे, वह जल में उनकी परछाईं देखकर उस परछाईं को पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे [और जल में गिर पड़ते थे]। इस प्रकार वह सदा आकाश में उड़ने वाले जीवों को खाया करती थी।

सोइ छल हनूमान तें कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।

उसने वही छल हनुमानजी से भी किया। हनुमानजी ने तुरन्त ही उसका कपट पहचान लिया।

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयेउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधुलोभा॥
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥

पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर श्रीहनुमानजी उस को मारकर समुद्र के पार गए। वहाँ जाकर उन्होंने वन की शोभा देखी। मधु (पुष्परस) के लोभ से भौंरे गुंजार कर रहे थे। अनेकों प्रकार के वृक्ष फल-फूल से शोभित थे, पक्षी और पशुओं के समूह को देखकर वे मन में प्रसन्न हुए।

सैल बिसाल देखि एक आगें। तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥

सामने एक बड़ा पर्वत देखकर हनुमानजी निर्भय होकर दौड़कर उस पर चढ़ गए।

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभुप्रताप जो कालहि खाई॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! इस में वानर (हनुमान) की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभु का प्रताप है, जो काल को भी खा जाता है।

गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥

पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बड़ा दुर्ग है, कुछ कहा नहीं जाता। वह अत्यन्त ऊँचा था। उसके चारों ओर समुद्र था। सोने के परकोटे की परछाईं बहुत झलक रही थी।

छं०—कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतन अति घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥

विचित्र मणियों से बना हुआ सोने का कोट (दुर्ग की दीवार) सुन्दर लंबा-चौड़ा और दृढ़ था। चौराहों, बाज़ारों, सुन्दर सड़कों और गलियों से सारा नगर बहुत प्रकार से सुन्दर बना हुआ था। वहाँ के हाथी, घोड़ों और खच्चरों के झुंड, पैदल सेना और रथ-समूह को कौन गिन सकता है? अनेक रूपधारी महाबलवान् राक्षसों की सेना का वर्णन करते नहीं बनता।

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥

वन, बाग, बगीचा, बगीचियाँ, सरोवर, कुएँ और बावलियाँ शोभित हो रही थीं। मनुष्य, नाग, देवता और गंधर्वों की कन्याएँ (जिन्हें रावण हर कर लाया था) अपने रूप से मुनियों

के मन को भी मोहती थीं। कहीं पर पर्वत के समान विशाल शरीर वाले अत्यन्त बलवान् मल्ल गर्जना कर रहे थे और अनेक अखाड़ों में कई भाँति से लड़ते हुए एक दूसरे को ललकारते थे।

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछुएक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥

भयंकर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके चारों दिशाओं में नगर की रक्षा करते थे। कहीं दुष्ट राक्षस, भैंसों, मनुष्यों, गौओं, बकरों आदि को खा रहे थे। तुलसीदास जी कहते हैं कि इसी कारण इनकी कथा कुछ थोड़ी सी ही कही है। ये सब श्रीरामचन्द्रजी के बाणरूपी तीर्थ में शरीर त्याग कर अच्छी गति पा जाएँगे।

दो०—पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि, नगर करौं पइसार॥४॥

नगर के बहुत से रक्षक देखकर हनुमानजी ने मन में विचार किया कि मैं अत्यन्त छोटा रूप धारण करूँ और रात को नगर में प्रवेश करूँ।

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥

मच्छर के समान (अर्थात बहुत ही छोटा) रूप रखकर हनुमानजी मनुष्यों में सिंहरूप या नृसिंहावतारी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को स्मरण करके लंका की ओर चले।

नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥

वहाँ (द्वारपाल) लंकिनी नामक एक राक्षसी थी। वह

बोली—तू मेरा निरादर करके जाता है ? दुष्ट तू मेरा भेद नहीं जानता ? यहाँ के जितने चोर हैं वे मेरे आहार हैं।

मुठिका एक महा कपि हनी । रुधिर बमत धरनीं ढनमनी ॥

हनुमानजी ने उसे एक घूँसा मारा जिस से वह रक्त उगलती हुई धरती पर लुढ़कने लगी।

पुनि सभारि उठी सो लंका । जोरि पानि कर बिनय ससंका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा । चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥

फिर लंकिनी सँभल कर उठी और डरती हुई हाथ जोड़कर विनती करने लगी। हे हनुमानजी ! ब्रह्मा ने जब रावण को वर दिया था तब चलते हुए उन्होंने मुझे यह चिन्ह बतलाया था—

बिकल होसि तैं कपि के मारे । तब जानेसु निसिचर संघारे ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता । देखेउँ नयन राम कर दूता ॥

कि बन्दर के मारने से जब तू बेसुध हो जाए तब जानना कि राक्षस अब मारे गए। हे तात, मेरा बहुत अधिक पुण्य है कि मैं ने श्रीरामचन्द्रजी के दूत के अपनी आँखों से दर्शन कर लिये।

दो०—तात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥४॥

हे तात, स्वर्ग और मोक्ष के सुख को यदि एक साथ तुला के एक पलड़े में रख दिया जाए तो भी वह सब मिलाकर उस सुख के बराबर नहीं हो सकता जो सुख एक क्षण मात्र के सत्संग से होता है।

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा । हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ॥

कोशलपुर के राजा श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में रखकर नगर में प्रवेश करके सब कार्य कीजिये।

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥
गरुअ सुमेरु रेनु सम ताही । राम कृपा करि चितवा जाही ॥

उसके लिये विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है, समुद्र गौ के खुर के समान छोटा हो जाता है, अग्नि शीतल हो जाती है और महान् सुमेरु उसको धूल के कण के समान है, जिसको श्रीरामचंद्रजी ने कृपा करके देख लिया हो।

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

हनुमानजी ने अत्यन्त छोटा रूप धारण किया और भगवान् को स्मरण कर वे नगर में प्रविष्ट हुए।

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयेउ दसानन मंदिर माहीं। अति विचित्र कहि जात सो नाहीं॥

उन्हों ने एक एक करके सब घरों को खोज डाला और जहाँ तहाँ असंख्यों योद्धाओं को देखा। फिर वे रावण के महल में गए जो ऐसा विचित्र था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि वैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥

हनुमानजी ने उसे (रावण को) सोते हुए देखा, परन्तु उस महल में सीता जी न दिखाई दीं। फिर एक सुहावना भवन दीख पड़ा, जिसमें भगवान् का मंदिर अलग बना हुआ था।

दो०—रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसी के वृंद तहँ, देखि हरष कपिराइ॥ ६॥

वह श्रीरामचन्द्रजी के आयुधों (अस्त्रों-धनुष और बाण) से अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती थी। वहाँ तुलसी के नए पौदों को देख कर वानरों के स्वामी हनुमानजी प्रसन्न हुए।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥

लंका में राक्षसों का समूह रहता है, यहाँ सज्जनों का

निवास कहाँ ? हनुमानजी अपने मन में यह विचार करने लगे, उसी समय विभीषण जागे।

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु तें होइ न कारज हानी॥

विभीषण ने 'राम' के नाम का स्मरण किया, तो हनुमानजी के हृदय में प्रसन्नता हुई और उन्होंने जान लिया कि यह कोई सज्जन है। और निश्चय किया कि इसके साथ हठ-पूर्वक (अवश्य) परिचय करूंगा, क्योंकि साधु पुरुष से कार्य की हानि नहीं होती (काम नहीं बिगड़ता)।

बिप्ररूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषनु उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महुँ कोई। मोरे हृदयँ प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

फिर हनुमानजी ने ब्राह्मण का रूप धारण करके कुछ वचन कहे, जिन्हें सुनते ही विभीषण उठ कर वहाँ आ गए। प्रणाम करके विभीषण ने कुशलता पूछी और कहने लगे कि हे ब्राह्मण, अपना वृत्तान्त समझा कर कहिये। क्या आप भगवान् के सेवकों में से कोई हैं ? मेरे हृदय में आपके प्रति अत्यन्त प्रीति हो रही है। क्या आप दीन जनों के प्रेमी श्रीरामचन्द्रजी हैं, जो मुझे बड़भागी (भाग्यशाली) बनाने के लिये आए हैं ?

दो०—तब हनुमंत कही सब, राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम॥७॥

तब हनुमानजी ने श्रीरामचन्द्रजी का सारा वृत्तान्त और अपना नाम बतलाया। उसको सुनते ही उन दोनों के शरीर पुलकित हो

उठे और श्रीरामचन्द्रजी के गुणों के समूह का स्मरण कर उनके मन मग्न हो गए।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुलनाथा॥

विभीषण कहने लगे—हे पवन-पुत्र! सुनो, हमारा यहां रहना ऐसा ही है जैसे दाँतों के बीच में जीभ रहती है। हे तात, मुझे अनाथ जानकर सूर्य-कुल के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी क्या कभी कृपा करेंगे?

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥

मेरा यह तमोगुणी शरीर (प्रभु से मिलने का) कोई साधन नहीं है, और मन में प्रभु चरण-कमलों के प्रति प्रीति भी नहीं।

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहीं संता
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥

हे हनुमान! अब मुझे भरोसा हो गया है (कि भगवान् की कृपा होगी) क्योंकि भगवान् की कृपा हुए बिना सज्जन नहीं मिलते। यह श्रीरामचन्द्रजी की ही कृपा है, जो आपने हठ पूर्वक (बिना बुलाए, रात में सोते से जगा कर) मुझे दर्शन दिया।

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

हनुमानजी कहने लगे—हे विभीषण, प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की रीति सुनो, वे अपने सेवक पर सदा प्रीति करते हैं! कहो न, मैं कौन सा कुलीन हूँ, किंतु सब प्रकार हीन हूँ। सवेरे यदि कोई मेरा नाम ले लेवे, तो उस दिन उसे भोजन ही न मिले।

दो०—अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर॥८॥

हे सखा सुनो, मैं ऐसा अधम हूँ, तो भी श्रीरामचन्द्रजी ने मुझ पर कृपा की। ऐसा कहते हुए श्रीरामचन्द्रजी के गुणों को स्मरण करके हनुमानजी के नेत्रों में जल भर आया।

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

जानते हुए भी जो ऐसे स्वामी को भूल जाएँ वे दुःखी होकर क्यों न भटकते फिरें। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के गुणों के समूह को कहकर उन्होंने अकथनीय आनन्द पाया।

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखा चहउँ जानकी माता॥

फिर विभीषण ने जिस प्रकार जानकीजी वहाँ रहती थीं, वह सब कथा कह सुनाई। तब हनुमानजी ने कहा कि हे भाई! सुनो, मैं जानकी माता को देखना चाहता हूँ।

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयेउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

इस पर विभीषण ने उसका पूरा उपाय बतलाया और तब हनुमानजी विदा होकर चल दिये। फिर वही (छोटा) रूप धारण कर के वे अशोक वन में गए जहाँ सीताजी रहती थीं।

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥

सीताजी को देख कर हनुमानजी ने मन ही मन प्रणाम किया। उन्हें (सीताजी को) रात के चारों पहर बैठे ही बैठे बीत जाते थे अर्थात् रात में भी उन्हें नींद नहीं आती थी। उनका शरीर दुर्बल हो गया था, शिर पर केशों की एक ही लट बनी थी। और हृदय में वे श्रीरामचन्द्रजी के गुण-समूह को जप रही थीं।

दो०—निज पद नयन दिएँ मन, राम चरन महुँ लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ॥९॥

दृष्टि अपने चरणों की ओर लगा रक्खी है और मन श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में लीन है। जानकीजी को इस दीन अवस्था में देखकर पवनपुत्र हनुमानजी अत्यन्त दुःखी हुए।

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई ॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा ॥

हनुमानजी वृक्ष के पत्तों में छिप रहे और विचार करने लगे कि भाई, अब मैं क्या करूँ? उसी समय रावण वहाँ आया, उसके साथ शृंगार किये हुए बहुत सी स्त्रियाँ थीं।

बहुबिधि खल सीतहिं समुझावा। साम दान भय भेद देखावा ॥

तब रावण ने साम, दान, भय, और भेद दिखलाकर सीताजी को बहुत प्रकार से समझाया।

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी ॥
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा ॥

तब रावण कहने लगा—हे सुन्दर मुखवाली, चतुर सीता! सुनो, मैं प्रण करता हूँ कि मंदोदरी आदि सब रानियों को मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा। तुम एक बार मेरी ओर देख तो लो।

तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करै बिकासा ॥

सीताजी तिनके की ओट कर और परम स्नेही अवधपति श्रीरामचन्द्रजी को स्मरण कर कहने लगीं—हे दशमुख! सुन, जुगनू के प्रकाश से क्या कभी कमलिनी खिलती है? (भाव यह है कि तू जुगनू है और मेरा मन कमल है जो श्रीरामचन्द्र रूपी सूर्य के सामने ही खिल सकता है)।

अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥
सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

सीताजी ने कहा—इस बात को भली भाँति मन में बिठा ले (कि तू जुगनू है और श्रीरामचन्द्रजी सूर्य हैं)। दुष्ट! तुझे श्रीरामचन्द्रजी के बाणों का ज्ञान नहीं? रे शठ! तू मुझे उनकी अनुपस्थितिमें चुरा लाया है। नीच! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती?

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान।
परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसिआन॥१०॥

अपने को जुगनू से और श्रीरामचन्द्रजी को सूर्य से तुलना देने वाले (सीताजी के) कठोर वचन सुन कर रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर तलवार खींचकर बोला।

सीता तैं मम कृत अपमाना। काटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥

हे सीता, तूने मेरा अपमान किया है इसलिये इस कठोर तलवार से मैं तेरा सिर काट लूँगा। हे सुंदर मुख वाली, या तो तू मेरी बात झट से मान ले नहीं तो तेरे जीवन का नाश होता है।

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा

सीताजी ने कहा—हे रावण, प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की भुजाएँ श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूँड के समान बलवाली हैं। सो हे शठ, सुन, मेरे कंठ में या तो वे बाहें होंगी या तेरी कठोर खड्ग, यह मेरा अटल प्रण है।

चन्द्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥

सीता जी ने तलवार को संबोधन करके कहा—हे चन्द्रहास [तलवार]! श्रीरामचन्द्रजी के विरह की अग्नि से उत्पन्न हुए मेरे

दुःख को दूर कर। सीता जी ने कहा, हे तलवार! तू ठंडी, तीखी और श्रेष्ठ धार को धारण किये है, मेरे दुःख का भार दूर कर।

सुनत वचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥

सीताजी के वचन सुनते ही रवण फिर उन्हें मारने दौड़ा, परन्तु मय नामक दैत्य की पुत्री (मंदोदरी) ने नीति का उपदेश देकर समझाया।

कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहिं बहु बिधि त्रासहु जाई॥
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

तब रावण ने सब राक्षसियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को अनेक प्रकार से डराओ-धमकाओ (और कहो) यदि एक मास में मेरा कहना नहीं मानेगी तो मैं तलवार निकालकर उसे मार डालूँगा।

दो०—भवन गयेउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहिं त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद॥११॥

(यह कहकर) रावण अपने प्रासाद में चला गया। इधर राक्षसियां भयंकर रूप धारण करके सीताजी को डराने लगीं।

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन-बिबेका॥
सबन्हौं बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥

त्रिजटा नाम की एक राक्षसी थी, जिसे श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम था और जो चतुर और विचारशीला थी। उसने सब राक्षसियों को बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा कि सीताजी की सेवा करके अपनी भलाई कर लो।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥

स्वप्न में मैंने देखा कि एक वंदर ने लंका जला दी और राक्षसों

की सारी सेना मार डाली। रावण नंगा और मुँड सिर गधे पर चढ़ा हुआ था, और उसकी बीसों भुजाएँ कटी हुई थीं।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥

इस प्रकार वह दक्षिण दिशा की ओर जा रहा था और लंका मानो विभीषण ने पा ली। नगर में श्रीरामचन्द्रजी की दुहाई फिर गई और तब श्रीरामचन्द्रजी ने सीता को बुला भेजा।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥

मैं पुकार कर कहती हूँ कि यह स्वप्न चार दिन बीतने पर अवश्य सत्य होगा। त्रिजटा का कथन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गईं और जानकीजी के चरणों में गिर पड़ीं।

दो०—जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि, मारिहि निसिचर पोच॥१२॥

फिर वे सब राक्षसियाँ जहाँ तहाँ चली गईं और जानकीजी मन में सोचने लगीं कि नीच राक्षस महीना दिन बीतने पर मुझे मार डालेगा।

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटा से कहने लगीं—हे माता, तू ही विपत्ति में मेरी साथिन है। तू शीघ्र ऐसा उपाय कर जिससे मैं अपना शरीर छोड़ दूँ। यह दुःसह वियोग अब सहा नहीं जाता।

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥

हे माता, लकड़ी लाकर भली भाँति चिता बना दे और फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी, तू मेरी प्रीति को सत्य कर

दिखला। शूल के समान सालने वाली [रावण की] वाणी कानों से कौन सुने ?

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी

सीताजी के ये वचन सुनकर त्रिजटा ने उन्हें चरण पकड़ कर समझाया और प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप, बल और सुयश को सुनाया। हे सुकुमारी, सुनो, रात्रि में आग नहीं मिलेगी। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गई।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा

सीता जी कहने लगीं—दैव प्रतिकूल हो गया है! न आग मिलेगी और न व्यथा दूर होगी। आकाश में प्रत्यक्ष अंगारे दिखाई पड़ते हैं, परन्तु पृथिवी पर एक भी तारा नहीं गिरता।

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

चन्द्रमा अग्निमय होता हुआ भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। हे अशोक वृक्ष, तू ही मेरी विनति सुन। तू अपना नाम सत्य कर और मेरे शोक को दूर कर।

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

तेरे नए नए पत्ते आग के समान हैं, तू ही मुझे आग दे कि मैं अपना अन्त कर लूँ। सीताजी को विरहसे अत्यन्त व्याकुल देखकर हनुमानजी को वह क्षण एक कल्प के समान व्यतीत हुआ।

सो०—कपि करि हृदयँ बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥१३॥

तब हनुमानजी ने हृदय में विचार करके अँगूठी गिरा दी,

मानो अशोक वृक्ष ने अंगारा फेंक दिया हो। सीताजी ने प्रसन्न होकर उसे हाथ में ले लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥

तब सीताजी ने उस मनोहर अँगूठी को देखा, वह अत्यन्त सुन्दर थी और उस पर श्रीरामचन्द्रजी का नाम खुदा हुआ था। अँगूठी पहिचान कर वे उसे विस्मयपूर्वक देखने लगीं और हृदय में आनन्द और शोक के आवेग से वे व्याकुल हो गईं।

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥

श्रीरामचन्द्रजी अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है? मायासे ऐसी अँगूठी रची नहीं जा सकती। इस तरह सीताजी मन में अनेक प्रकार से उधेड़ बुन कर ही रही थीं कि हनुमान जी मीठे वचनों से बोले।

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहुँ तें सब कथा सुनाई॥

वे श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन करने लगे, जिन्हें सुनते ही सीताजी का दुःख दूर हो गया। कान और मन लगाकर सीताजी उसे सुनने लगीं और हनुमानजी आरम्भसे (अर्थात् जबसे रघुनाथजी मिले थे तबसे लेकर अब तक) सब कथा कह सुनाई।

श्रवनामृत जेहिं कथा सुनाई। कही सो प्रगट होत किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयेऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भयेऊ॥

फिर सीताजी ने कहा—भाई, कानों को अमृत के समान सुख देने वाली यह कथा जिसने सुनाई है, वह प्रकट क्यों नहीं

होता ? तब हनुमानजी सीताजी के पास चले गए । हनुमानजी के पास पहुँचने पर सीताजी को मन में बड़ा विस्मय हुआ (कि बन्दर क्या राम-कथा सुनाएगा ?) और वे मुँह फेरकर बैठ गईं ।

राम दूत मैं मातु जानकी । सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥

हे माता जानकी, मैं श्रीरामचन्द्रजी का दूत हूँ, करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजी की मुझे सच्ची सौगंध है । हे माता, यह अँगूठी मैं लाया हूँ, श्रीरामचन्द्रजी ने यह आपके लिये चिह्न-स्वरूप दी है ।

नर बानरहि संग कहु कैसें । कही कथा भइ संगति जैसें ॥

सीताजी ने पूछा, यह बताओ कि मनुष्य और बन्दर का संग कैसे हुआ ? तब, जिस प्रकार संग हुआ था, वह सब कथा हनुमानजी ने कह सुनाई ।

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास ।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥१४॥

हनुमानजी के प्रेम सहित वचनों को सुनकर सीताजी के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया । उन्होंने जान लिया कि मन, वचन और कर्म से यह कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी का सेवक है ।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी । सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥
बूड़त बिरहजलधि हनुमाना । भयहु तात मो कहुँ जलजाना ॥

हनुमनाजी को भगवान् का भक्त जानकर (सीताजी के मन में उनके प्रति) अत्यन्त प्रीति बढ़ी । नेत्र सजल हो गए और शरीर में रोमांच हो आया । उन्होंने कहा—हे हनुमान, वियोग के समुद्र में डूबती हुई मुझको (बचाने के लिये) तुम नौका के समान हो गए हो ।

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुखभवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, अब यह बताओ कि सुख के धाम खरारी (खर राक्षस को मारने वाले श्रीरामचन्द्रजी) छोटे भाई लक्ष्मण समेत कुशल से तो हैं? हे हनुमान! श्रीरामचन्द्रजी तो कोमलचित्तवाले और दयालु हैं फिर उन्होंने निठुराई क्यों धारण कर ली है?

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥

श्रीरामचन्द्रजी सहज स्वभाव से ही सेवकों को सुख देने वाले हैं। क्या वे कभी मुझे स्मरण करते हैं? हे तात! उनके श्याम और सुकुमार शरीर को देखकर क्या मेरे नेत्र कभी शीतल होंगे?

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥

सीताजी से आगे कुछ कहते नहीं बना। उनके नेत्रों में जल भर आया। उन्होंने इतना ही कहा, "स्वामी ने मुझे सर्वथा ही भुला दिया!" सीताजी को विरह से अत्यन्त व्याकुल देखकर हनुमानजी नम्रता से मृदु वचन बोले—

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपानिकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥

हे माता, छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत भगवान् कुशल पूर्वक हैं, पर वे कृपानिकेतन केवल आपके दुःख से दुःखी हैं। हे माता, आप अपना जी छोटा न कीजिये। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी को आपसे दूना प्रेम है।

दो०—रघुपति कर संदेसु अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयेउ, भरे बिलोचन नीर ॥१५॥

हे माता, अब धीरज रखकर श्रीरामचन्द्रजी का सन्देश सुनिये—ऐसा कहकर हनुमानजी गदगद हो गए, उनकी आँखों में आँसू भर आए।

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू

[हनुमानजी कहने लगे—] श्रीरामचन्द्रजी ने कहा है कि हे सीता, तुम्हारे वियोग में मेरे लिये सब बातें विपरीत (उलटी) हो गई हैं। वृक्षों के नए नए पत्ते मानों आग के समान, रात काल-रात्रि के समान और चन्द्रमा सूर्य के समान (तपाने वाला) हो गया है।

कुबलय बिपिन कुंतबन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जो हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥

कमलों का वन भालों के वन के समान हो गया है और बादल तो मानो गरम तेल ही बरसाते हैं। जो अभी तक सुखदायक थे, वे ही अब पीड़ा देते हैं। तीनों प्रकार की शीतल, मंद और सुगन्धित वायु साँप की फुंकार के समान लगती है।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

कहने से भी दुःख कुछ कम हो जाता है परन्तु मैं किससे कहूँ? कोई इस दुःख का जानने वाला नहीं है। हे प्यारी, मेरे और तुम्हारे प्रेम के तत्त्व को एक मेरा मन ही जानता है।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

और वह मन सदा तुम्हारे पास रहता है। बस इतने में ही प्रीति का रस समझ लो। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का संदेश सुनते ही सीताजी प्रेम में मग्न हो गईं, उन्हें अपने शरीर की भी सुधि न रही।

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवकसुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

हनुमानजी कहने लगे—हे माता, हृदय में धैर्य रखिये और सेवकों को सुख देने वाले श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कीजिये। अपने हृदय में श्रीरामचन्द्रजी की प्रभुता का ध्यान कीजिये और मेरे वचन सुनकर अपनी व्याकुलता को छोड़ दीजिये।

दो०—निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु, जरे निसाचर जानु॥१६॥

राक्षसों का समुदाय पतंगों के समान है और श्रीरामचन्द्रजी के बाण (उनको जलाने के लिये) अग्नि के समान हैं। हे माता, आप हृदय में धैर्य रखिये और राक्षसों को जला हुआ समझिये।

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की॥

यदि श्रीरामचन्द्रजी ने आपका समाचार पाया होता तो वे देरी नहीं करते। हे जानकीजी, श्रीरामजी के बाणरूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसरूपी अन्धकार का समूह कहाँ रह सकता है?

अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित आइहहिं रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥

हे माता! मैं आपको अभी उठा ले चलूँ, परन्तु मैं

श्रीरामचन्द्रजी की शपथ खाकर कहता हूँ कि मुझे प्रभु की आज्ञा नहीं है। हे माता, कुछ दिनों तक धीरज रखिये, श्रीरामचन्द्रजी बानरों समेत आएँगे। वे राक्षसों को मारकर आपको ले जाएँगे और तीनों लोकों में नारद आदि उनका यश गान करेंगे।

हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥
मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनकभूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बल बीरा॥

सीताजी ने कहा—हे पुत्र, बंदर तो सब तुम्हारे ही समान छोटे छोटे होंगे पर राक्षस योद्धा तो बड़े बलवान् हैं। इसलिये मेरे हृदय में बड़ा संदेह है (कि वे इनको जीत सकेंगे या नहीं)। सीताजी का यह कथन सुनकर हनुमानजी ने अपना शरीर प्रकट किया। हनुमानजी का वह शरीर सोने के पर्वत (सुमेरु) के समान विशाल, और वे स्वयं संग्राम में अत्यन्त भयंकर और अति बलशाली प्रतीत हुए।

सीता मन भरोस तब भयेऊ। पुनि लघुरूप पवनसुत लयेऊ॥

तब सीताजी के मन में भरोसा हो गया। पवनपुत्र हनुमानजी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया।

दो०—सुनु माता साखामृग, नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभुप्रताप तें गरुड़हिं, खाइ परम लघु ब्याल॥१७॥

हे माता! सुनिये, हम बन्दरों में न कोई बड़ा बल है और न बुद्धि; परन्तु श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप से अत्यन्त छोटा साँप भी गरुड़ को खा सकता है।

मन संतोष सुनत कपिबानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥

हनुमानजी की भक्ति, प्रताप, तेज और बल से सनी हुई

बातें सुनकर सीताजी के मन में संतोष हुआ। हनुमानजी को श्रीरामचन्द्रजी का प्यारा जान कर उन्होंने आशीर्वाद दिया कि हे तात, तुम बल और शील के भंडार होओ।

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

हे पुत्र, तुम अजर, अमर और गुणों के भंडार होओ और श्रीरामचन्द्रजी तुम पर सदा प्रेम रखें। "प्रभु कृपा करें" यह कानों से सुनकर हनुमानजी भरपूर प्रेम में मग्न हो गए।

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयेउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

हनुमानजी ने बारंबार सीताजी के चरणों में सिर नवाया और हाथ जोड़ कर बोले—हे माता, अब मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, क्योंकि आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) प्रसिद्ध है।

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥

हे माता ! सुनिये, वृक्षों पर सुन्दर फल देखकर मुझे बहुत भूख लग आई है। सीताजी ने कहा—हे पुत्र ! सुनो, उद्यान की रक्षा बहुत से राक्षस करते हैं, जो बड़े भारी पराक्रमी योद्धा हैं।

तिन्हकर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं

हनुमानजी ने कहा—हे माता यदि आप मन में सुख मानें तो मुझे उनका डर नहीं है।

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि, तात मधुर फल खाहु ॥१८॥

हनुमानजी को बुद्धि और बल में चतुर देखकर सीताजी

ने कहा कि हे तात, जाओ और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों को हृदय में रखकर मीठे फल खाओ।

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥

रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥

सीताजी को सिर नवाकर हनुमानजी विदा हुए और उद्यान में घुस कर उन्होंने फल खाए और वृक्षों को तोड़ने लगे। वहाँ बहुत से वीर रक्षक थे, जिनमें कुछको हनुमानजी ने मार डाला और कुछ ने जाकर रावण से पुकार की।

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥

खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥

हे नाथ, एक भारी वन्दर आया है जिसने अशोक वाटिका उजाड़ दी है, फल खा लिये हैं, वृक्ष उखाड़ डाले हैं और रखवालों को मसल मसलकर पृथिवी पर दे मारा है।

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥

सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥

यह सुनकर रावण ने बहुत से योद्धाओं को भेजा। उन्हें देखकर हनुमानजी गर्जे। फिर हनुमानजी ने राक्षसों को मार डाला। कुछ अधमरे राक्षस चिल्लाते हुए रावण के पास गए।

पुनि पठयेउ तेहि अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥

आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

फिर रावण ने अक्षकुमार को भेजा। वह असंख्य योद्धाओं को संग लेकर चला। उसे आते देखकर हनुमानजी ने एक वृक्ष लेकर ललकारा और उसे मारकर ऊँचे स्वर से गर्जना की।

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूरि।

कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि॥१९॥

जो राक्षस आए थे, उन में से कुछ को मार डाला, कुछ को मसल डाला और कुछ को धूल में मिला दिया और कुछ ने फिर जाकर पुकार की कि हे स्वामी, बन्दर बड़ा बलवान् है।

सुनि सुतबध लंकेस रिसाना । पठएसि मेघनाद बलवाना ॥
मारेसु जनि सुत बाँधेसु ताही । देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥

पुत्र-वध सुनकर लंकापति रावण क्रोध से भर गया और उसने बली मेघनाद को भेजा और उसे कहा कि हे पुत्र, उसे मारना मत, वरन् बाँध लाना, देखें तो वह बन्दर है कहाँ का।

चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा।
कपि देखा दारुन भट आवा । कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥

इन्द्र को जीतने वाला अतुल वीर मेघनाद चला। भाई का मरना सुनकर उसे क्रोध उत्पन्न हो आया । हनुमानजी ने जब यह देखा कि कोई भयानक वीर आया है, तब वे कटकटा कर गर्जे और उस पर झपटे।

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा ॥
रहे महाभट ताके संगा । गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा ॥

उन्होंने एक अत्यन्त विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और लंकापति रावण के बेटे मेघनाद को रथ-विहीन कर दिया (उसका रथ तोड़ डाला) । उसके साथ जो बड़े बड़े योद्धा थे, उन्हें पकड़ पकड़ कर हनुमानजी अपने शरीर के नीचे दबाकर मसलने लगे।

तिन्हहिं निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा ॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई । ताहि एक छन मुरुछा आई ॥

उन सब को मार कर वे मेघनाद से युद्ध करने लगे। दोनों ऐसे भिड़े मानो दो गजराज लड़ रहे हों। मेघनाद को

घूँसा मारकर हनुमानजी एक वृक्षपर जा चढ़े। घूँसे से मेघनाद को एक क्षण के लिए मूर्छा आ गई।

उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाय प्रभंजन-जाया॥

फिर उठकर मेघनाद ने बहुत माया की, परन्तु पवन-पुत्र हनुमानजी किसी भाँति जीते नहीं जा सके।

दो०—ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ, महिमा मिटइ अपार॥२०॥

तब मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र चढ़ाया, हनुमानजी ने मन में विचार किया कि यदि ब्रह्मबाण को न मानूँगा तो उसकी अपार महिमा मिट जाएगी।

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयेऊ। नागपास बाँधेसि लै गयेऊ॥

मेघनाद ने हनुमानजी को ब्रह्मबाण मारा, पर उन्होंने गिरते हुए भी राक्षसों की सेना का संहार कर दिया। मेघनाद ने जब देखा कि बंदर मूर्छित हो गया है, तब नागफाँस से बाँध कर उसे ले गया।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भवबंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बँध तर आवा। प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा॥

शिवजी कहते हैं कि हे भवानी। सुनो! जिनके नाम को जपकर ज्ञानी मनुष्य संसार के बंधन काट डालते हैं, उनका दूत क्या किसी के बंधन में पड़ सकता है? प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के कार्य के लिये हनुमानजी ने स्वयं ही अपने को बँधवा लिया।

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥

बंदर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े। खेल देखने

के लिये वे सब रावण की सभा में पहुँचे । हनुमानजी ने जाकर रावण की सभा देखी। उस की अपार महिमा का कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता ।

कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥

देवता और दिक्पाल नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े खड़े थे और सब भय से उसकी त्योरी की ओर देख रहे थे। रावण का ऐसा प्रताप देखकर हनुमानजी के मन में कुछ भी भय न हुआ। वे ऐसे निर्भय रहे जैसे सर्पों के बीच गरुड़ निर्भय रहता है।

दो०—कपिहिं बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद ।
सुतबध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदयँ बिषाद ॥२१॥

बंदरको देखकर रावण गाली देकर हँसा। फिर, जब अपने पुत्रके बधका स्मरण किया तब उसके हृदयमें शोक उत्पन्न हुआ।

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥

लंकापति रावण ने कहा कि अरे बंदर, तू कौन है ? किसके बूते पर तूने बन को उजाड़ा ? क्या तू मुझे कानों से नहीं सुनता ? अरे दुष्ट, मैं तुझे बहुत ही निडर देखता हूँ !

मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिचरति माया॥

तूने राक्षसों को किस अपराध के लिये मारा ? अरे दुष्ट ! बतला, क्या तुझे प्राणों का भी डर नहीं ? हनुमानजी ने उत्तर दिया—हे रावण ! सुन, जिनका बल पाकर माया समस्त ब्रह्मांडों की रचना करती है—

जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥

और जिनके बलसे हे रावण ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव क्रमशः उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, जिनके बल से हज़ार सिर वाले शेषनाग पर्वत और वनों समेत समस्त ब्रह्मांड को अपने सिर पर धारण करते हैं—

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहि भंजा । तेहि समेत नृपदल मद गंजा ॥

जो देवताओं के रक्षक हैं और [उनकी रक्षा के लिये] नाना रूप के शरीर धारण किया करते हैं, जो तुम्हारे जैसे दुष्टों को शिक्षा देने वाले हैं, जिन्होंने शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ा और उसी के समेत राजाओं के दल का अभिमान तोड़ा।

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

जिन्होंने अतुल-बल-संपन्न खर, दूषण, त्रिशिरा और बाली, सब को मार डाला—

दो०—जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥२२॥

जिनके बल के लेशमात्र से (अर्थात् शंकर जी ने तुझे जो बल दिया था यह उनके बल का लेशमात्र है) तूने चर और अचर सब को जीत लिया है और जिनकी प्यारी स्त्री को तू चुरा लाया है, मैं उन्हीं का दूत हूँ।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई । सहसबाहु सन परी लराई
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा

मैं तुम्हारी शक्ति को जानता हूँ। सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और तुमने बाली से युद्ध करके भी यश पाया था (कथा परिशिष्ट में देखिये)। हनुमानजी के वचन सुनकर रावण ने उन्हें हँसकर टाल दिया, जैसे सुना ही न हो।

खायेउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥

मुझे भूख लगी थी इसलिये फल खा लिये और वृक्षों को तोड़ना बंदरों का स्वभाव ही होता है, मैंने भी उसी स्वाभाववश वृक्ष तोड़ डाले। इस पर ये दुराचारी राक्षस मुझे मारने लगे। हे स्वामी, देह सब को अत्यन्त प्यारी होती है।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा

जिन्होंने मुझे मारा, उन्हीं को मैंने मारा। इस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँध लिया। मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं क्योंकि मैं अपने प्रभु श्रीरामजी का कार्य करना चाहता हूँ।

विनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन
देखहु तुम्ह निज कुलहिं बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी

हे रावण, मैं हाथ जोड़ कर विनती करता हूँ। अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने कुल को विचार कर देखो (अर्थात् पुलस्त्य ऋषि के वंशज और ब्रह्मा के पुत्र होकर तुम राक्षसों का काम करते हो) और भ्रम छोड़कर भक्तों के भय को हरने वाले भगवान श्रीरामचन्द्रजी को भजो।

जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै॥

जिसके डर से देवता, राक्षस और चराचर को भक्षण करने वाला काल भी डरता है, उससे वैर कभी नहीं करना चाहिये। इसलिये मेरे कहने से जानकीजी को दे दो।

दो०—प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि॥२३॥

खर के शत्रु श्रीरामचन्द्रजी दया के समुद्र हैं और दीनों को पालनेवाले हैं। शरण में जाने से वे प्रभु तुम्हारे अपराध भुलाकर तुम्हारी रक्षा ही करेंगे।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषिपुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥

श्रीरामचन्द्रजी के चरण-कमलों को हृदय में धारण करके लंका में अचल राज्य करो। पुलस्त्य ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा है, उस चन्द्रमा के कलंक मत बनो।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषनभूषित बर नारी॥

अभिमान और मोह को त्यागकर विचार करके देखो—श्रीरामचन्द्रजी के नाम के बिना वाणी शोभा नहीं पाती। हे देवताओं के शत्रु! सब गहनों से सजी हुई होने पर भी सुंदरी स्त्री वस्त्रों के बिना शोभित नहीं होती।

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥

जो मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी से विमुख हैं उसकी संपत्ति और प्रभुता गई सी ही समझनी चाहिये, मिलने पर भी वह न मिलने के समान है। जिस भाँति जिन नदियों का निकास सजल (जलपूर्ण) नहीं है, वे वर्षा हो जाने के पश्चात् तुरंत सूख जाती हैं।

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहीं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥

हे रावण! सुनो, मैं पन (शर्त) लगाकर कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी से विमुख व्यक्ति को बचाने वाला कोई भी नहीं

है। तुम्हें, जो श्रीरामचन्द्रजी के वैरी हो, हज़ारों शिव, विष्णु और ब्रह्मा भी नहीं बचा सकते।

दो०—मोहमूल बहु सूलप्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिंधु भगवान ॥२४॥

तुम तमोगुण पूर्ण अभिमान को त्याग दो, जो अज्ञान की जड़ है और बहुत पीड़ा पहुँचाने वाला है और दया के समुद्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का भजन करो।

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहिं कपि गुर बड़ ग्यानी

यद्यपि हनुमानजी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से भरी हुई अति हितकी बातें कहीं, तो भी वह महा अभिमानी रावण हँसकर कहने लगा कि हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला है!

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥

रे दुष्ट तेरी मृत्यु पास आ गई है। नीच, इसलिये तू मुझे सीख देने लगा है! हनुमानजी ने कहा कि ठीक इसका उलटा होगा अर्थात मेरी मृत्यु की तो अभी संभावना नहीं पर तेरी मृत्यु निश्चित है। मुझे स्पष्ट भासता है कि तेरी बुद्धि फिर गई है।

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥

हनुमानजी के वचन सुनकर रावण बहुत खीझा और कहने लगा कि इस मूर्ख को शीघ्र ही क्यों नहीं मार डालते? यह सुनकर राक्षस हनुमानजी को मारने के लिये दौड़े। उसी समय मन्त्रियों समेत विभीषण आ गए।

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥

सिर नवाकर उन्होंने बहुत बिनती की और कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिये क्योंकि यह नीति के विरुद्ध है। हे स्वामी, इसलिये कोई और दंड दीजिये। इस पर सब राक्षसों ने कहा कि भाई, यह संमति अच्छी है।

सुनत बिहँसि बोला दसकंधर। अंगभंग करि पठइअ बंदर॥

यह सुनकर रावण हँसकर कहने लगा कि बंदर को अंगभंग करके (कोई अंग काटकर) भेज दो।

दो०—कपि कें ममता पूँछ पर, सबहिं कहेउ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ॥२५॥

रावण ने सबको समझाकर कहा कि बंदर को पूँछ बहुत प्यारी होती है, इस लिये कपड़े को तेल में डुबोकर और फिर उसे इसकी पूँछ पर बाँधकर आग लगा दो।

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहिं लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

जब बिना पूँछ का यह बंदर वहाँ जाएगा, तब दुष्ट अपने स्वामी को साथ ले आएगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं भी तो देखूँ उनकी सामर्थ्य कितनी है?

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥

यह वचन सुनकर हनुमानजी अपने मन ही मन मुसकराए। मैं समझता हूँ कि सरस्वतीजी सहायक हो गई हैं। रावण के वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही रचना रचने (काम करने) लगे, जो उसने कही थी।

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥

इधर हनुमानजी ने एक खेल किया। अपनी पूँछ इतनी लंबी कर दी कि नगर भर में लपेटने के लिये कपड़ा तथा भिगोने के लिये घी और तेल कुछ भी नहीं वचा। खेल देखने के लिये नगर-निवासी वहाँ आ गए। वे उन्हें लात मारते और खूब हँसी करते थे।

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयेउ परम लघुरूप तुरंता॥

वे सब ढोल बजाने और ताली पीटने लगे। फिर उन्हें नगर में घुमाकर उनकी पूँछ में आग लगा दी। आग जलती देखकर हनुमानजी ने झटपट अत्यन्त छोटा रूप धारण कर लिया।

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥

फिर उछलकर वे सोने की अटारी पर चढ़ गए जिससे राक्षस (रावण) की स्त्रियां भयभीत हो गईं।

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास॥२६॥

प्रभु की प्रेरणासे उस समय उनचासों पवन चलने लगे। हनुमानजी ठहाका मारकर गर्जे और बढ़कर आकाश से जा लगे।

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥

हनुमानजी की देह विशाल थी पर थी बहुत ही हलकी। वे एक घर से दूसरे घर पर चढ़ कर दौड़ने लगे। सारा नगर जलने लगा, लोग व्याकुल हो गए और अग्नि की कई करोड़ भयंकर लपटें झपटने लगीं।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहिं उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥

हाय पिता ! हाय माता ! यह चिल्लाहट सुनाई पड़ने लगी। सब चिल्लाए इस समय हमारी रक्षा कौन करेगा ? हमने जो कहा था कि यह वंदर नहीं किंतु कोई देवता वंदर का रूप किये हुए है।

साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

साधु के तिरस्कार (अपमान) का यही फल होता है कि नगर ऐसे जल रहा है जैसे वह किसी अनाथ का हो अर्थात उसका कोई रक्षक न हो। केवल विभीषण के घर को छोड़ कर हनुमानजी ने एक क्षण में सारा नगर जला डाला।

ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती जिसने अग्नि को उत्पन्न किया है, हनुमानजी उसीके दूत थे। इसी कारण वे नहीं जले। हनुमानजी ने उलट पलटकर सारी लंका को जला दिया और फिर समुद्र में कूद पड़े।

दो०—पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें, ठाढ़ भयेउ कर जोरि॥२७॥

पूँछ को बुझाकर और थकावट को दूर करके हनुमानजी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया और हाथ जोड़कर वे सीताजी के आगे जा खड़े हुए।

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयेऊ। हरष समेत पवनसुत लयेऊ॥

और बोले—हे माता ! मुझे कोई वस्तु चिह्नस्वरूप दीजिये जैसे श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे दी थी। तब सीताजी ने अपनी चूड़ामणि उतारकर दे दी जिसे प्रसन्न हो हनुमानजी ने ले लिया।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीनदयालु बिरुद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

सीताजी ने कहा—हे तात, भगवान् को मेरा प्रणाम करके यह कहना कि हे प्रभु आप तो सब प्रकार कामनाएँ पूरी करने वाले हैं। अपने दीनदयालु होने के यश को ध्यान में रखते हुए आप मेरे भारी संकट को दूर कीजिये।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहिं समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥

हे तात! प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को इन्द्र के पुत्र जयन्त की कथा सुनाना और उसके पीछे जो बाण छोड़ा था उसका प्रताप समझाना। एक मास के अन्दर यदि स्वामी न आएँगे तो फिर मुझे जीती न पाएँगे।

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहूँ तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मोकहुँ सोइ दिनु सोइ राती॥

हे हनुमान, तुम्हीं कहो, मैं कैसे प्राण बचाए रक्खूँ? जबकि हे तात, तुम्हीं जाने के लिये कह रहे हो। तुम्हें देख छाती ठंडी हुई थी, अब मेरे लिये फिर वही दिन और वही रातें होंगी।

दो०—जनकसुतहिं समुझाइ करि, बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरनकमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहिं कीन्ह॥२८॥

जानकीजी को समझाकर हनुमानजी ने बहुत प्रकार से धीरज दिया और फिर उनके चरण कमलों में सिर नवाकर वे श्रीरामचन्द्रजी के पास चल दिये।

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी
नाँघि सिंधु एहि पारहिं आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा

चलते समय हनुमानजी ने बहुत ऊँची ध्वनि से गर्जना

की, जिसे सुनकर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर गए। फिर समुद्र को लाँघकर हनुमानजी इस पार आए और उन्होंने वंदरों को अपनी किलकारी का शब्द सुनाया।

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

हनुमानजी को देखकर सब वानर प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना नया जन्म समझा। उन्होंने कहा तुम्हारा मुख प्रसन्न और शरीर पर तेज विराजमान है, इससे तुमने अवश्य श्रीरामचन्द्रजी का कार्य कर लिया है।

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥

सब वानर हनुमानजी से मिले और अत्यन्त सुखी हुए, मानो छटपटाती हुई मछली को पानी मिल गया हो। वे सब प्रसन्न होकर हनुमानजी से नए समाचार पूछते और कहते हुए श्रीरामचन्द्रजी के पास चल दिये।

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधुफल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टिप्रहार हनत सब भागे।

फिर सब लोग मधुवन के भीतर पहुँचे और अंगदजी की संमति से मीठे फल खाने लगे। जब रक्षक लोग रोकने लगे तब वानरों ने उन्हें घूँसों से मारा, जिससे वे सब भाग गए।

दो०--जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि, करि आए प्रभुकाज॥२९॥

उन सब रक्षकोंने (सुग्रीव से) जाकर पुकार की कि युवराज अंगदने वनको उजाड़ दिया है! यह सुनकर सुग्रीव प्रसन्न हुए और समझ गए कि वानर प्रभुजी का कार्य पूरा कर आए हैं।

जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा

यदि सीता का समाचार न पाया होता तो मधुवन के फल वे क्या खा सकते थे? राजा सुग्रीव इस प्रकार मन में विचार कर ही रहे थे कि अपने समाज समेत सब वानर वहाँ आ गए!

आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। रामकृपाँ भा काजु बिसेषी

सब ने आकर चरणों में सिर नवाया और वानरों के स्वामी सुग्रीव सब से बड़े प्रेम से मिले। फिर सुग्रीव ने जब कुशल पूछी तो उन्होंने कहा कि आपके चरणोंके दर्शनसे सब कुशल है और श्रीरामजी की कृपासे जो कार्य था वह भली भाँति पूरा हो गया।

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपतिपहिं चलेऊ

हनुमानजी ने ही प्रभुका कार्य पूरा किया है और सब वानरों के प्राण बचाए हैं। यह सुनकर सुग्रीव हनुमानजी के गले फिर मिले और सब वानरों समेत श्रीरामचन्द्रजी के पास गए।

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा
फटिकसिला बैठे दोउ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई

श्रीरामचन्द्रजी ने जब वानरों को आते देखा तब यह जान कि कार्य हो गया है वे मन में बड़े प्रसन्न हुए। दोनों भाई स्फटिक शिला पर बैठे हुए थे कि सब वानरोंने आकर उनके चरण छुए।

दो०—प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुनापुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पदकंज॥३०॥

दयालु श्रीरामचन्द्रजी सप्रेम सबसे मिले और कुशल पूछी। वानर बोले—हे नाथ, आपके पद-पद्म देखकर ही सब कुशल है।

जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥

जांबवान् बोले—हे रघुनाथजी, सुनिये। जिस पर, हे नाथ, आप दया करते हैं उसका सदा कल्याण है और निरंतर कुशल है। देवता, मनुष्य और मुनि, सब उसपर प्रसन्न रहते हैं।

सोइ बिजई बिनई गुनसागर। तासु सुजसु त्रयलोक उजागर॥
प्रभु की कृपा भयेउ सबु काजू। जनम हमार सुफल भा आजू॥

वही विजयी है, वही विनयी है, वही गुणों का समुद्र है और उसीका सुयश तीनों लोकों में प्रकाशित होता है। हे स्वामी, आपकी कृपा से सब कार्य पूरा हो गया और हमारा जन्म आज सफल हुआ।

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

हे नाथ, पवनपुत्र हनुमानजी ने जो करके दिखाया है, उसका हज़ार मुखोंसे भी वर्णन नहीं हो सकता। फिर जांबवानने हनुमानजी के सुहावने चरित्र श्रीरामचन्द्रजी को कह सुनाए।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

सुनकर दयानिधान श्रीरामचन्द्रजी के मन को वे सब चरित्र अत्यन्त प्रिय लगे। फिर उन्होंने प्रसन्न होकर हनुमानजी को अपने हृदयसे लगाया और कहा कि हे तात! बताओ, सीताजी किस प्रकार रहती हैं और कैसे अपने प्राणों की रक्षा करती हैं?

दो०—नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहिं बाट॥३१॥

हनुमानजी ने कहा—हे स्वामी, उनके प्राण किस मार्ग से

निकलें ? दिनरात उनके लिये आपका नाम (जिसे रटती रहती हैं) पहरेदार है, आपका ध्यान (जिसे लगाए रहती हैं) किवाड़ हैं और अपने चरणों की ओर लगे हुए उनके जो नेत्र हैं, वही मानो ताला लगा हुआ है ।

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥

चलते समय उन्होंने मुझे यह चूड़ामणि दी थी। श्रीरामचन्द्रजी ने लेकर उसे अपने हृदय से लगा लिया। फिर हनुमानजी कहने लगे—हे नाथ, दोनों नेत्रों में जल भर कर जानकी जी ने कुछ संदेश भी कहा है ।

अनुज समेत गहेहु प्रभुचरना । दीनबंधु प्रनतारतिहरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥

सीताजी ने कहा है—लक्ष्मणजी के और प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरण पकड़ना और प्रार्थना करना कि हे दीनबंधु ! हे भक्तजनों के दुःखों को दूर करने वाले ! मैं मन, वाणी और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ—फिर हे नाथ, आपने किस अपराध के कारण मुझे त्याग दिया ?

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥

अपना एक दोष तो मानती हूँ कि आप से वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं निकले । किन्तु हे नाथ ! यह नेत्रों का अपराध है, जो निकलते हुए प्राणों को हठपूर्वक रोक लेते हैं अर्थात आपके दर्शनों की लालसा शेष है इसी लिये जीती हूँ ।

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥

आपका वियोग अग्नि के समान है और मेरा शरीर रुई के समान है तथा मेरे श्वास पवन के समान हैं। इनसे वैसे तो मेरा शरीर एक क्षण में जल जाए परन्तु नेत्र अपने लाभ (दर्शन) के लिये जल बरसाते रहते हैं, जिससे शरीर विरहाग्नि में जलने नहीं पाता (ध्वनि यह है कि मैं हर समय आपके दर्शनों के लिये रोया करती हूँ, आप शीघ्र ही मेरा उद्धार करें)।

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहे भलि दीनदयाला ॥

हे दीनदयालु ! सीता जी की विपत्ति इतनी भयंकर है कि उसे न कहना ही अच्छा है।

दो०—निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिं कलप सम बीति ।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुजबल खलदल जीति ॥३२॥

हे दयानिधान, आँख की एक एक झपक सीता जी को कल्प के समान बीतती है। इसलिये हे स्वामी, शीघ्र चलिये और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के समूह को जीतकर उन्हें ले आइये।

सुनि सीता दुख प्रभु सुखअयना। भरि आए जल राजिव नयना
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही

सीता जी का दुःख सुनकर सुख के धाम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के कमल समान नेत्रों में जल भर आया और वे कहने लगे—मन, वाणी और शरीर (कर्म) से जिसको मेरा ही आश्रय है, उस पर क्या स्वप्न में भी विपत्ति आ सकती है ?

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहिं जीति आनिबी जानकी

हनुमानजी ने कहा कि हे प्रभु, विपत्ति वही तो है कि जब आपका स्मरण और भजन न हो सकें। हे स्वामी, राक्षसों की बात ही कितनी है ? शत्रु को जीतकर जानकी जी को ले आइये।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी
प्रतिउपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि हे हनुमान ! सुनो, तुम्हारे समान मेरा उपकार करने वाला देवता, मनुष्य, अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तुम्हारा प्रत्युपकार क्या करूँ, मेरा मन (लज्जा के मारे) तुम्हारे सम्मुख नहीं हो सकता।

सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहिं चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥

हे पुत्र ! सुनो, मैंने मन में विचार कर देख लिया है कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओं के रक्षक श्रीरामचन्द्रजी हनुमानजी की ओर बारबार देख रहे थे, उनके नेत्रों में जल छलछला रहा था और शरीर अत्यन्त पुलकित हो रहा था।

दो०—सुनि प्रभुवचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत॥३३॥

प्रभुजी के वचन सुनकर और उनके मुख के दर्शन करके हनुमानजी पुलकित शरीर और प्रेममें मग्न होकर उनके चरणों में गिर गए और पुकार उठे, "हे भगवन, मेरी रक्षा कीजिये"।

बार बार प्रभु चहहिं उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी बार बार उठाना चाहते थे परन्तु हनुमानजी प्रेम में मग्न थे कि उन्हें उठना रुचता न था। प्रभु का करकमल हनुमानजी के सिर पर रक्खा हुआ था, उस दशा को स्मरण करके (रामकथा कहते हुए) गौरीपति शंकर मग्न हो गए।

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥

मनको सावधान करके शंकरजी वही अति सुन्दर रामकथा फिर कहने लगे। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीको उठा कर अपने हृदयसे लगाया और हाथ पकड़कर अपने अति पास बैठा लिया।

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥

श्रीरामचन्द्रजी पूछने लगे—हे हनुमान, यह बताओ कि तुमने रावणसे रक्षित लंकाके अति विशाल दुर्गको कैसे जलाया? प्रभुको प्रसन्न जानकर हनुमानजी गर्वशून्य वचन बोले—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाँघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

बंदर की वीरता के क्या कहने कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर उछल जाता है! मैंने जो समुद्र लाँघकर स्वर्णपुरी लंका को जलाया और राक्षसों को मार कर वन को उजाड़ दिया, हे श्रीरामचन्द्रजी, यह सब आप ही का प्रताप है। हे नाथ, इसमें मेरी चतुराई कुछ भी नहीं है।

दो०—ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं, जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभाव बड़वानलहिं, जारि सकइ खलु तूल॥३४॥

हे स्वामी, जिसपर आप दयालु हों उसके लिये कुछ भी दुःसाध्य नहीं है। आपके प्रताप से साधारण रुई भी बड़वानल को जला सकती है।

नाथ भगति अति सुखदायिनी। देहु कृपा करि अनपायिनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपिबानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

हे नाथ, आप कृपा करके अत्यन्त सुख देने वाली अपनी अचल भक्ति मुझे दीजिये। शिवजी कहते हैं हे भवानी, हनुमानजी की अति सरल वाणी सुनकर प्रभुजी ने कहा "ऐसे ही हो"।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संवाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥

हे पार्वती, श्रीरामचन्द्रजी का स्वभाव जिसने जान लिया, उसे उनका भजन छोड़कर और कुछ नहीं भाता। यह प्रसंग जिसके मनमें आएगा वही श्रीरामजी के चरणों की भक्ति पाएगा।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपालु सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहिं बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुनकर वानरों के झुंड कहने लगे—हे कृपालु, हे सुखमूल, आपकी जय हो, जय हो! तब श्रीरामचन्द्रजी ने कपिराज सुग्रीव को बुलाया और कहा कि चलने की तैयारी करो।

अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥

अब देरी किस कारण करते हो? शीघ्र ही वानरों को आज्ञा दो। यह सब कौतुक देखकर आकाश से बहुत से फूल बरसाकर देवता प्रसन्न होकर अपने अपने घरों को चल दिये।

दो०—कपिपति बेगि बोलाए, आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ॥३५॥

कपिराज सुग्रीव ने शीघ्र ही सब को बुलाया। सब सेनापति अपनी अपनी सेना सहित आगए। वे वंदर और रीछों के झुंड अनेक रंग के और अत्यन्त बलशाली थे।

प्रभु पदपंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सैना। चितइ कृपा करि राजिवनैना॥

वे सब महाबलवान् रीछ और बंदर आकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों में शिर नवाने और गर्जना करने लगे।

श्रीरामचन्द्रजी ने बन्दरों की सारी सेना देख ली। फिर वे कमलनेत्रोंसे कृपापूर्वक उनकी ओर निहारने लगे।

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥

श्रीरामचन्द्रजी की कृपा का बल पाकर वे सब श्रेष्ठ बन्दर ऐसे हो गए मानो सुमेरु पर्वत को पंख लग गए हों। तब श्रीरामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर प्रस्थान किया। उस समय भाँति भाँति के सुन्दर और शुभ शकुन होने लगे।

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेही। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥

जिनकी कीर्त्ति सभी मंगलों से पूर्ण है (अर्थात् जिनकी कीर्त्ति का गान करने से सब मंगल होते हैं) उनके प्रस्थान के समय शकुन होना उचित ही है। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके प्रस्थान करने की बात सीताजी ने जान ली, मानों उनके वाम अंगों ने फरककर कह दिया हो (स्त्रियों का बायाँ अंग फरकना शुभ-सूचक है)।

जोइ जोइ सगुन जानकिहिं होई। असगुन भयेउ रावनहिं सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहि बानर भालु अपारा॥

जानकीजी को जो जो शकुन हो रहे थे, रावण के लिये वही अशकुन हुए। सेना चल दी, उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य रीछ और बन्दर गर्जना कर रहे थे।

नख आयुध गिरिपादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

नख रूपी शस्त्र और पर्वत एवं वृक्षों को लिये हुए वे बन्दर अपनी इच्छानुसार पृथ्वी और आकाश में चलने लगे। रीछ और बन्दर सिंह के समान गर्जना करते थे जिससे दिग्गज (दिशाओं के हाथी) डगमगाने और चिघाड़ने लगे।

छं०—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥

वानर सेना के चलते ही दिग्गज चिंघाड़ने लगे, पृथिवी हिलने लगी, पहाड़ काँपने लगे, समुद्र में खलबली मच गई। सूर्य, चन्द्रमा, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब के मन प्रसन्न हो गए कि दुःख दूर हुए। कई कई करोड़ विकट योद्धा बन्दर कटकटाते और दौड़ते थे तथा कोशलपति श्रीरामचन्द्रजीकी जय-जयकार करते हुए उनके प्रबल प्रताप और गुणों के का गान करते थे।

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठपृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥

सर्पाधिपति शेषनाग उस भारी बोझको न सह सकने से बार बार मूर्छित हो जाते थे और बार बार (अपने आधार) कछुए की कठोर पीठ को दाँतों में दबा लेते थे। (परन्तु दाँत कठोर पीठ में नहीं धँसते केवल उनसे चिह्न होते जाते थे) इस अवस्था में शेषनाग ऐसे शोभित हो रहे थे मानों श्रीरामजी की सुन्दर यात्रा के व्योरे को अत्यन्त मनोहर जानकर वे उसे कछुए की दृढ़ और पवित्र पीठ पर अमिट और पवित्र रूप में लिख रहे हों।

दो०—एहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर॥३६॥

इस प्रकार कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी ने समुद्र के किनारे जाकर डेरा डाला और असंख्य शूरवीर रीछ और बन्दर जहाँ तहाँ फल खाने लगे।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयेउ कपि लंका
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा

जब से हनुमानजी लंका जला गए, तब से वहाँ—लंका में—राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने अपने घर में सब विचार करने लगे कि राक्षस-कुल का अब बचाव नहीं है।

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवनि भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥

जिसके दूत ही के बल का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं आनेपर नगरकी कौनसी भलाई होगी? दूतियोंसे नगरवासियों की यह बातें सुनकर मंदोदरी (रावण पत्नी) बहुत घबराई।

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीतिरस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥

एकांत में, हाथ जोड़कर और पति के चरण छूकर वह नीति-रस से सने हुए वचन कहने लगी—हे स्वामी, भगवान् से विरोध त्याग दीजिये, मेरा कहना अत्यन्त हितकारी जान, उसे हृदय में धारण कीजिये।

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

जिसके दूत के पराक्रम को ही स्मरण करके राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, उसकी स्त्री को, हे स्वामी, यदि भलाई चाहते हो, तो अपने मन्त्री को बुलाकर उसके साथ भेज दो।

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीतनिसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

आपके कुलरूपी कमल-वन को दुःख देने के लिये सीता सरदी की रात्रि के समान आई है। हे नाथ! सुनिये, सीता को दिये बिना शिव और ब्रह्माके किये भी आपका कल्याण नहीं होगा।

दो०—रामबान अहिगन सरिस, निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतनु करहु तजि टेक ॥३७॥

श्रीरामचन्द्रजीके बाण सर्पोंके समूहके समान हैं और राक्षसों के झुंड मेंडकों के समान। अतः जब तक ये सर्प राक्षरूपी मेंडकों को खा नहीं लेते, तब तक हठ छोड़ कर यत्न कर लो।

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहँसा जगत बिदित अभिमानी
सभय सुभाउ नारि कर साँचा। मंगल महुँ भय मन अति काँचा

संसार में प्रसिद्ध घमंडी और दुष्ट रावण कानों से मंदोदरी का कथन सुनकर हँसा और बोला—स्त्रियों का स्वभाव सचमुच डरपोक होता है। इन्हें मंगल में भी भय होता है, उनका मन बहुत ही कच्चा होता है।

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जा की त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥

जो वन्दरों की सेना आजाए तो उसे खाकर राक्षस बेचारे जी जाएँ। जिसके डर से लोकपाल तक काँपते हैं, उसकी स्त्री डरे यह बड़ी हँसी की बात है।

अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयेउ कंत पर बिधि बिपरीता॥

ऐसा कहकर रावण ने हँसकर मंदोदरी को हृदयसे लगा लिया और बड़े अभिमानमें फूलकर सभाको चल दिया। मंदोदरी हृदयमें चिंता करने लगी कि स्वामीपर विधाता ही उलटा होगया है।

बैठेउ सभा खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचितमत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

रावण जब जाकर सभा में बैठा तो उसे यह समाचार मिला

कि (बन्दरों की) सब सेना समुद्र के पार आ गई है। रावण ने मंत्रियों से पूछा कि उचित सलाह बतलाओ। वे सब हँसे और कहने लगे कि आप चुप रहिये क्योंकि जब देवताओं और राक्षसों को जीतने में आपको कुछ श्रम उठाना नहीं पड़ा, तब मनुष्य और बन्दर किस गिनती में हैं ?

दो०—सचिव बैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास ॥३८॥

जब मंत्री, वैद्य और गुरु यदि किसी प्रकार के भय अथवा आशा के कारण चाटूक्ति करें तो राज्य, शरीर और धर्म, तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥
अवसरु जानि बिभीषनु आवा। भ्रात चरन सीसु तेहिं नावा ॥

ऐसी ही सहायता रावणको मिली। मंत्री (भय से) उसे सुना सुनाकर स्तुति करते थे, वास्तविक बात न कहते थे। अवसर जानकर वहाँ विभीषण आया और भाई रावण के चरणों में उसने सिर नवाया।

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौ कृपाल पूँछहु मोहिं बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता ॥

फिर सिर नवाकर, अपने आसन पर बैठकर और आज्ञा पाकर विभीषण ये वचन बोला कि हे कृपालु, यदि आप मेरे से पूछते हैं तो, हे तात, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके भले की बात कहूँगा।

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलारु गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं ॥

हे स्वामी, जो मनुष्य अपना कल्याण, सुयश, सुबुद्धि और

शुभ गति चाहता हो, वह पराई स्त्री के मुख से चौथ के चंद्रमा के समान दूर रहे।

चौदह भुवन एकपति होई। भूतद्रोह तिष्ठइ नहिं सोई॥
गुनसागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

चौदह लोकों का अकेला अधिपति भी यदि जीवों से द्वेष रखता है तो नहीं बच सकता। जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर भी हो परन्तु उसमें यदि थोड़ा सा भी लोभ हो तो उसे कोई भला नहीं कहता।

दो०—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहिं, भजहु भजहिं जेहि संत॥३९॥

हे नाथ, काम, क्रोध, मद और लोभ—सब नरक के मार्ग हैं। इसलिये इन सब को छोड़ कर श्रीरामचन्द्रजी का ही भजन करो, जिन्हें सब संत जन भजते हैं।

तात रामु नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहुँ कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता॥

हे तात! श्रीरामचन्द्रजी मनुष्यों के साधारण राजा नहीं हैं। वे तो सब भुवनों के स्वामी और काल के भी काल हैं। वे ब्रह्म हैं, विकार-रहित हैं, अजन्मा हैं, भगवान् हैं, व्यापक हैं, अजेय हैं, अनादि हैं और अपार हैं।

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥

पृथिवी, गौ, ब्राह्मण और देवताओं का हित करने के लिये स्वयं दयानिधान ही मनुष्य-शरीर धारण किये हुए हैं। हे भाई, सुनो, वे भक्तों को प्रसन्न करने वाले, दुष्टों के समूह का नाश करने वाले और वेद तथा धर्म के रक्षक हैं।

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा । प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही । भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥

उनसे वैर त्याग कर उन्हें मस्तक नवाना चाहिये क्योंकि श्रीरघुनाथजी शरणागतों के दुःख दूर करने वाले हैं। हे स्वामी, प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को सीता दे दीजिये और उनका भजन कीजिये, वे बिना कारण (स्वभाव से) ही सब के प्रेमी हैं।

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्वद्रोहकृत अघ जेहि लागा ॥
जासु नाम त्रयताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥

समस्त संसार से द्वेष रखने का पाप भी जिसे लगा हो, उसे भी शरण में आने पर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी नहीं त्यागते । हे रावण, जिनका नाम तीनों तापों को नष्ट करने वाला है वही प्रभु प्रकट हुए हैं, यह अपने हृदय में समझ लीजिये।

दो०—बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस ।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस ॥४०॥

हे रावण! मैं बार बार आपके पाँव पड़ता हूँ और आपसे विनति करता हूँ, कि अभिमान, मोह (अज्ञान) और मद को त्याग कर कोसल-पति श्रीरामचन्द्रजी का भजन कीजिये।

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन, कहि पठई यह बात ।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसरु तात ॥४१॥

हे तात! पुलस्त्य मुनि (आपके पितामह) ने अपने शिष्य द्वारा यह बात कहला भेजी थी वही मैंने सुअवसर पाकर तुरंत ही प्रभु (आप) से कह दी है।

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीतिबिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन ॥

माल्यवान् नाम का एक अत्यन्त चतुर मंत्री था। विभीषण

के वचन सुनकर उसने अत्यन्त सुख माना और कहा—हे तात, आपका छोटा भाई विभीषण नीति का आभूषण (बड़ा नीति कुशल) है, वह जो कहता है उसे हृदय में धारण करें।

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयेउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥

रावण क्रोध में आकर बोला—ये दोनों दुष्ट शत्रु की बड़ाई कर रहे हैं। यहाँ कोई है? इन्हें दूर क्यों नहीं करते? यह सुनकर माल्यवान् तो घर को चला गया और विभीषण फिर हाथ जोड़कर कहने लगा—

सुमति कुमति सब के उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना

हे नाथ, वेद और पुराण ऐसा कहते हैं कि सद्बुद्धि अथवा दुर्बुद्धि सब के हृदय में रहती है। जहाँ सद्बुद्धि होती है वहाँ अनेक प्रकार की संपत्ति विराजती है, किंतु जहाँ दुर्बुद्धि होती है वहाँ अन्त में विपत्ति ही आती है।

तव उर कुमति बसी बिपरीती। हित अनहित मानहु रिपु प्रीती॥
कालराति निसिचरकुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

आपके हृदय में उलटी दुर्बुद्धि बस गई है, इसलिये आप मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र मानने लगे हैं। जो सीता राक्षस-कुल के लिये कालरात्रि के समान है (राक्षसों का नाश करनेवाली है) उसीसे आपकी बड़ी प्रीति हो गई है।

दो०—तात चरन गहि माँगउँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार॥४२॥

हे तात, मैं चरण पकड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरे प्रेम का पास रखिए। श्रीरामचन्द्रजी को सीता दे दीजिये, ताकि आपका अनिष्ट न हो।

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥

यद्यपि विभीषण ने उस सन्मार्ग की व्याख्या करके बता दी जो कि वेद, पुराण और ज्ञानी लोगों के मत के अनुकूल था, फिर भी रावण उसे सुनते ही क्रोध में भरकर उठा और बोला—दुष्ट! अब तेरी मृत्यु पास आ गई है।

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजबल जेहि जीता मैं नाहीं॥

अरे दुष्ट, तू सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात् मेरे आश्रय) तो जीता है फिर भी मूर्ख तुझे शत्रु ही का पक्ष प्यारा लगता है! अरे दुष्ट, बता तो सही, संसार में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो?

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती
अस कहि कीन्हेसि चरनप्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥

मेरे नगर में बसकर तपस्वियों से प्रेम करता है? अरे दुष्ट, तू उन्हीं से जाकर मिल जा और उन्हीं को नीति का उपदेश दे। ऐसा कहकर रावण ने लात मारी, तो भी छोटे भाई ने बारंबार उसके चरणों को पकड़ा।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती, संत की बड़ाई यही है कि बुराई करने वाले के साथ भी भलाई ही करे। विभीषण ने कहा—आप मेरे पिता के समान हैं। कोई बात नहीं जो मुझे मार लिया, किंतु हे नाथ, आपका हित श्रीरामचन्द्रजी का भजन करने में ही है।

सचिव संग लै नभपथ गयेऊ। सबहिं सुनाइ कहत अस भयेऊ॥

फिर अपने मंत्रियों को संग लेकर विभीषण आकाश-मार्ग से गया और सब को सुनाकर ऐसा कहने लगा—

दो०—रामु सत्यसंकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥४३॥

श्रीरामचन्द्रजी दृढ़ निश्चय वाले हैं (वे राक्षसों का नाश करके ही रहेंगे)। तुम्हारी सभा काल के वश हो रही है। मैं अब श्रीरामचन्द्रजी की शरण में जाता हूँ। मुझे दोष मत देना।

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥

ऐसा कह कर विभीषण जभी चला तभी सब राक्षस आयु-हीन हो गए। शिवजी कहते हैं कि हे भवानी, साधुजनों का तिरस्कार तुरंत ही सब कल्याणों को नष्ट कर देता है।

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयेउ बिभव बिनु तबहिं अभागा
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥

रावण ने जिस समय विभीषण को छोड़ा उसी समय वह अभागा (रावण) श्रीहीन हो गया। विभीषण प्रसन्न होकर मन में बहुत से मनोरथ करता हुआ श्रीरामचन्द्रजी के पास चल दिया।

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी ॥

वह सोचने लगा—मैं जाकर उन चरणकमलों के दर्शन करूँगा जो लाल, कोमल और सेवकों को सुख देने वाले हैं। जिन चरणों का स्पर्श करके ऋषिपत्नी अहल्या तर गई और जो दंडकारण्य को पवित्र करने वाले हैं।

जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई ॥

जिन चरणों को जानकीजी ने हृदय में धारण किया हुआ

है, जो चरण कपट-मृग के पीछे उसे पकड़ने को दौड़े, और जो चरण शिवजी के हृदयरूपी सरोवर के कमल हैं, मैं उन्हीं के दर्शन करूँगा। मेरा अहोभाग्य है!

दो०—जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥४४॥

जिन चरणों की पादुकाओं में भरतजी मन लगाए हुए हैं, उन चरणों को अब आज जाकर इन नेत्रों से देखूँगा।

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयेउ सपदि सिंधु एहि पारा
कपिन्ह बिभीषनु आवन देखा। जाना कोउ रिपुदूत बिसेषा ॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक विचार करता हुआ विभीषण शीघ्र ही समुद्र के इस पार आ गया। बन्दरों ने जब विभीषण को आते देखा तब उसे शत्रु का कोई विशेष दूत समझा।

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई ॥

उसे रोककर वानर कपिराज सुग्रीव के पास आए और उन्हें सब समाचार सुनाए। सुग्रीव ने कहा हे श्रीरामचन्द्रजी सुनिये—रावण का भाई मिलने आया है।

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि हे मित्र, तुम क्या समझते हो? सुग्रीव कहने लगे—हे नरनाथ, सुनिये राक्षसों की माया जानी नहीं जाती। न जाने यह कामरूप (इच्छानुसार रूप बना लेने वाला) राक्षस किस लिये आया है।

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी ॥

कदाचित यह दुष्ट हमारा भेद लेने आया है, इसलिये मुझे तो

यही जँचता है कि इसे बन्दी बना लिया जाए ! श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—हे मित्र, नीति तो तुमने अच्छी सोची है, परंतु मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं शरणागत के भय को दूर करने वाला हूँ।

सुनि प्रभुवचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना ॥

प्रभु के वचन सुनकर हनुमानजी प्रसन्न हुए कि भगवान् शरणागत से कितना प्रेम करने वाले हैं !

दो०—सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥४५॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे—शरणागत को अपना शत्रु समझकर जो लोग त्याग देते हैं, वे नीच और पापी हैं, उन्हें देखने ही से हानि होती है।

कोटि विप्रबध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

जिसे करोड़ ब्राह्मणों के मारने का पाप लगा हो उसे भी शरण आने पर मैं नहीं तजता। ज्योंही प्राणी मेरे संमुख आजाता है, त्योंही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई ॥

पापी प्राणी का यह साधारण स्वभाव ही होता है कि उसे मेरा भजन कभी अच्छा नहीं लगता। यदि यह विभीषण कदाचित् दुष्ट हृदयवाला ही होता तो क्या वह मेरे संमुख आता ?

निर्मलमन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

जिस मनुष्य का मन निर्मल होता है, वही मुझे पाता है, क्योंकि कपट, छल और पाप मुझे अच्छे नहीं लगते। हे कपि-

राज सुग्रीव, यदि रावण ने उसे भेद लेने के लिये ही भेजा हो तो भी कोई डर या हानि नहीं है।

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाई। राखिहउँ ताहि प्रान की नाई॥

हे मित्र, संसार में जितने भी राक्षस हैं, उन सबको लक्ष्मण एक पल में मार सकते हैं। यदि वह डरा हुआ शरण में आया है तो मैं अपने प्राणों की भाँति उसकी रक्षा करूँगा।

दो०—उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत॥४६॥

कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी ने हँसकर कहा—कि दोनों ही दशाओं में (भेद लेने आया हो तो भी और शरण आया हो तो भी) उसे ले आओ। तब, कृपालु श्रीरामचन्द्रजी की जय हो, यह कहकर अंगद और हनुमान समेत वानर चल दिये।

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरहि ते देखे दोउ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥

आदर के साथ विभीषण को आगे करके बन्दर वहाँ चले जहाँ करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजी थे। नेत्रों को आनन्द का दान देने वाले दोनों भाइयों को विभीषण ने दूर ही से देखा।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनतभयमोचन॥

फिर श्रीरामचन्द्रजी को देखकर विभीषण पलकों को रोक कर एकटक देखता हुआ ठिठककर रह गया। वे लंबी भुजाएँ! वे कमल के समान लाल नेत्र! वह दीनों के भय को दूर करने वाला साँवला शरीर!

सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥

वे सिंह के (कंधों के) समान पुष्ट कंधे ! वह सुहावनी चौड़ी छाती ! और वह मुख जो अनेक कामदेवों के मन को भी हर ले! (ऐसे दर्शन पाते ही) विभीषण के नेत्रों में जल भर आया और सारे शरीर में रोमांच हो उठा। उसने मन में धैर्य धारण करके यह विनति की—

नाथ दसासन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहिं तम पर नेहा॥

हे स्वामी, मैं रावण का भाई हूँ। हे देव-रक्षक, राक्षस-वंश में मेरा जन्म हुआ है। जैसे उल्लू अंधकार से प्रेम रखता है उसी प्रकार मेरी तमोगुणी देह स्वभाव से ही पाप-प्रिय है।

दो०—श्रवन सुजसु सुनि आयेउँ, प्रभु भंजन भवभीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरनसुखद रघुबीर॥४७॥

हे प्रभु, हे संसार के फंदों को तोड़ने वाले श्रीरामचन्द्रजी, मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ। हे दुःख के हरने वाले, हे शरणागत को सुख देने वाले रघुवीर, आप मेरी रक्षा कीजिये।

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥

ऐसा कहकर विभीषण को जब दंडवत करते देखा तब विशेष प्रसन्नता के साथ प्रभु श्रीरामचन्द्रजी तुरंत उठे। विभीषण के दीन वचन श्रीरामचन्द्रजी के मन को प्रिय लगे। उन्होंने उसे अपनी विशाल भुजाओं से उठा कर छाती से लगा लिया।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगतभयहारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥

लक्ष्मण सहित विभीषण से मिलकर भक्तों के भय को दूर करने वाले श्रीरामचन्द्रजी उसे पास बिठा कर ये वचन कहने लगे—हे लंकापति विभीषण कहो, परिवार सहित कुशल तो हो क्योंकि तुम्हारा वास बड़े बुरे स्थान (कुसंगति) में है।

खलमंडलीं बसहु दिनु राती। सखा धर्म निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नयनिपुन न भाव अनीती॥

हे मित्र, तुम दिन, रात दुष्टों की मंडली में बसते हो, वहाँ धर्म कैसे निभ सकता है ? मैं तुम्हारी सब रीति जानता हूँ। तुम नीति में अत्यन्त निपुण हो और तुम्हें अनीति अच्छी नहीं लगती।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्टसंग जनि देइ विधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥

हे तात ! चाहे नरक में रहना पड़े, यह अच्छा है, परन्तु विधाता दुष्टों का संग न दे। विभीषण ने कहा—हे श्रीरामचन्द्रजी, आपके चरणों के दर्शन करके अब सब कुशल है, जो आपने मुझे भक्त जानकर मेरे ऊपर दया की है।

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोकधाम तजि काम॥४८॥

जीव के लिये तब तक कुशल नहीं और उसके मन को स्वप्न में भी तब तक विश्राम नहीं मिलता जब तक वह दुःखों से परिपूर्ण काम-वासना को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी को नहीं भजता।

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥

लोभ, मोह, मत्सर (डाह, ईर्षा), मद और मान आदि अनेक दुष्ट तब तक हृदय में रहते हैं, जब तक धनुषबाण लिये और कमर में तरकस बाँधे हुए श्रीरामचन्द्रजी हृदय में नहीं बसते।

ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसत जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

स्वार्थरूपी घोर अँधेरी रात राग द्वेषरूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है। वह जीव के मन में तब तक रहती है जब तक प्रभु के प्रताप का सूर्य वहाँ उदय नहीं होता।

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पदकमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिविध भवसूला॥

हे श्रीरामचन्द्रजी, आपके चरण-कमल देखकर अब मैं कुशलपूर्वक हूँ। मेरे सब भारी भय मिट गए हैं। हे कृपालु, जिस पर आप दयालु हों उसे तीनों प्रकारके सांसारिक कष्ट नहीं सताते।

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहि प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा

मैं राक्षस हूँ, मेरा स्वभाव अत्यन्त नीच है, मैंने कभी कोई अच्छा काम नहीं किया। फिर भी जिसका स्वरूप मुनियों तकके ध्यानमें नहीं आता, उसी प्रभुने प्रसन्न होकर मुझे हृदयसे लगा लिया है।

दो०—अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपासुखपुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव, सेब्य जुगल पदकंज॥४९॥

हे कृपा और सुख के पुंज श्रीरामचन्द्रजी, मेरा अपार अहो-भाग्य है कि मैंने अपने नेत्रों से उन दोनों चरणकमलों के दर्शन कर लिये हैं जो ब्रह्मा और शिवजी द्वारा सेवा करने योग्य हैं।

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे—हे मित्र, सुनो, मैं अपना स्वभाव बतलाता हूँ, जिसे काकभुशुंडि, शिवजी और पार्वती भी जानते हैं।

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

चर और अचर सब का द्रोही होता हुआ भी जो मनुष्य मद, मोह और नाना प्रकार के छल कपट छोड़कर भयभीत होकर मेरी शरण में आवे तो मैं उसे तुरत साधु के समान बना देता हूँ ।

जननी जनक बंधु सुत दारा । तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी ॥

माता, पिता, भाई-बंधु, पुत्र, स्त्री, शरीर, संपत्ति, घर, मित्र और परिवार—सब के ममतारूपी तागे को इकट्ठा कर, डोरी बटकर उससे जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है;

समदरसी इच्छा कछु नाहीं । हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें । लोभी हृदयँ बसइ धन जैसें ॥

जो समदर्शी (शत्रु मित्र पर समान दृष्टि रखने वाला) हो जाता है, जिसे कुछ इच्छा नहीं रहती और जिसके मन में हर्ष, शोक और भय कुछ भी नहीं रहता—ऐसा सज्जन मेरे हृदय में इस प्रकार बसता है जैसे लोभी के हृदय में धन बसा करता है ।

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे । धरउँ देह नहिं आन निहोरे ॥

तुम्हारे समान सज्जन मुझे प्रिय हैं। मैं किसी दूसरे के निमित्त शरीर धारण नहीं करता (सज्जनों ही की रक्षा हित करता हूँ) ।

दो०—सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विजपद प्रेम ॥५०॥

जो गुणवान् हों, ईश्वर के भक्त हों, परोपकार में तत्पर हों, नीति और नियम में दृढ़ हों, और जिन्हें ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम हो, वे मनुष्य मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं ।

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें । तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें ॥
राम बचन सुनि बानरजूथा । सकल कहहिं जय कृपाबरूथा ॥

हे लंकापति विभीषण, सुनो ! ये सब गुण तुम में हैं, इसी से

तुम मुझे अत्यन्त प्यारे हो। श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुनकर वानरों का समस्त समुदाय पुकार उठा "कृपानिधान की जय हो"।

सुनत विभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥

विभीषण प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की वाणी सुनकर और उसे कानों के लिये अमृत समान जानकर तृप्त नहीं होता था। वह बार बार श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल पकड़ता था और उसके हृदय में अपार प्रेम नहीं समाता था।

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही॥

विभीषण कहने लगे—हे चराचर (संसार भर) के स्वामी, शरणागत के रक्षक और हृदय के अन्दर की बात भी जानने वाले देव! सुनिये, पहले मेरे हृदय में कुछ वासना थी, किन्तु अब वह आपके चरणों की प्रीतिरूपी नदी में बह गई है।

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु दया करि सिव मन भावनी
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिंधु कर नीरा

हे कृपालु, अब दया करके मुझे अपनी पवित्र भक्ति दीजिये, जो सदा शिवजी के मन को रुचती है। रणधीर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर तुरंत समुद्र का जल माँगा।

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमनबृष्टि नभ भई अपारा॥

और कहा—हे मित्र, यद्यपि तुम्हारे हृदय में कोई इच्छा नहीं है तथापि संसार में मेरा दर्शन निष्फल नहीं जाता। ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण को राजतिलक कर दिया। उस समय आकाश से लगातार पुष्प-वृष्टि हुई।

दो०—रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखंड ॥४१॥

रावण की क्रोधरूपी अग्नि और (दुःख से निकली हुई विभीषण की) अपनी साँस (आह) रूपी प्रवल वायु से जो विभीषण जल रहा था उसे श्रीरामचन्द्रजी ने बचा लिया और अखंड राज्य दे दिया।

जो संपति सिव रावनहिं, दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥४२॥

जो संपत्ति शिवजी ने रावण को दश सिर (काटकर) चढ़ाने पर दी थी, वही संपत्ति विभीषण को श्रीरामचन्द्रजी ने संकोचपूर्वक (यह सोचते हुए कि मैंने कुछ भी नहीं दिया) दे दी।

अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपिकुल मन भावा

ऐसे प्रभु को छोड़कर जो दूसरों का भजन करते हैं, वे मनुष्य विना सींग और पूँछ के पशु हैं। अपना भक्त जानकर उन्होंने विभीषण को अपना लिया। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का यह स्वभाव वानर-समूह के मन को वहुत अच्छा लगा।

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सबरहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारनमनुज दनुज कुल घालक॥

फिर श्रीरामचन्द्रजी—जो सर्वज्ञ, सब के हृदय में वसनेवाले, सर्वरूप, सवसे रहित, उदासीन, नीति की रक्षा करने वाले, कारण-वश मनुष्यरूप धारण किये हुए और राक्षसों के कुल का नाश करनेवाले हैं—ये वचन बोले—

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती

हे कपिराज सुग्रीव, हे लंकेश, वीर विभीषण, सुनो! इस गंभीर समुद्र को किस तरह पार करें जो मगरमच्छ, साँप और मछली आदि अनेक जीव-जन्तुओं से भरा हुआ अत्यंत गहरा और सब प्रकार से दुस्तर है?

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। विनय करिअ सागर सन जाई॥

लंकापति विभीषण ने कहा—हे श्रीरामचन्द्रजी, सुनिये, यद्यपि आपका बाण करोड़ों समुद्रों को सुखा सकता है, तथापि नीति यही है कि जाकर समुद्र से विनय करें।

दो०—प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि, कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु कपि धारि॥५३॥

हे प्रभु, समुद्र आपका कुलगुरु है (वंश का पूर्वज है क्योंकि सगर राजा के पुत्रों के खोदने से सागर बना था)। वह विचार कर कोई ऐसा उपाय बतलाएगा जिससे बिना परिश्रम के ही रीछ और वानरों का समस्त समूह समुद्र के पार उतर जाएगा।

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मित्र, तुमने अच्छा उपाय बतलाया है, ऐसे ही करेंगे। संभव है दैव सहायक हो जाए। यह परामर्श लक्ष्मणजी के मन को अच्छा नहीं लगा। श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुनकर उन्हें अत्यंत दुःख हुआ।

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

लक्ष्मणजी कहने लगे—हे नाथ, दैव का क्या भरोसा? मन में क्रोध कीजिये और समुद्र को सुखा डालिये। कायरके

मन का दैव ही एक आधार है और आलसी लोग ही दैव दैव चिल्लाया करते हैं।

सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहिं समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुस्कराकर कहा—मन में धीरज रखो, ऐसे ही करूँगा। यह कहकर छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी समुद्र के पास गए।

प्रथम प्रनामु कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषनु प्रभु पहिं आए। पाछे रावन दूत पठाए॥

पहले सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजीने प्रणाम किया। फिर किनारे पर कुश बिछाकर बैठ गए। ज्यों ही विभीषण प्रभुजी के पास आए त्यों ही पीछे से रावण ने अपने भेदिये भेज दिये थे।

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे, धरें कपट कपि देह।
प्रभुगुन हृदयँ सराहहिं, सरनागत पर नेह॥५४॥

उन्होंने छल से वानरों का शरीर धारण करके सब चरित्र देखे और वे प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के गुणों की सराहना करने लगे कि इनका शरणागत पर कितना प्रेम है!

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥

वे खुले मुँह श्रीरामचन्द्रजी के स्वभाव की बड़ाई करने लगे। अत्यंत प्रेम में मग्न होने के कारण उन्हें अपना छिपाव भूल गया। तब वंदरो ने उन्हें पहचान लिया कि ये शत्रु के भेदिये हैं और उनको बाँधकर वे कपिराज सुग्रीव के पास ले आए।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंगभंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहुँ पास फिराए॥

सुग्रीव ने कहा—हे वंदरो! सुनो, इन राक्षसों के अंग

तोड़कर इन्हें छोड़ दो। सुग्रीव के वचन सुनकर वानर दौड़े और उन्होंने उन दूतों को बाँधकर छावनी के चारों ओर घुमाया।

बहुप्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥

वानर उन्हें बहुत तरह से मारने लगे। वे दीनता से चिल्लाने लगे तो भी उन्होंने उन्हें न छोड़ा। (जब बंदर नाक कान काटने पर उतारू हुए तब वे चिल्लाकर बोले)--जो हमारे नाक और कान काटे उसे कोसलाधीश श्रीरामचन्द्रजी की सौगंद है।

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुलघाती॥

यह पुकार सुनकर लक्ष्मणजी ने सब को पास बुलाया, उन्हें दया आ गई और हँस कर उन्होंने उन भेदियों को तुरंत छुड़वा दिया और कहा—यह चिट्ठी रावण के हाथ में दे देना और कहना कि हे कुलघाती! लक्ष्मण के इन वचनों को पढ़।

दो०—कहेहु मुखागर मूढ़सन, मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त, आवा कालु तुम्हार॥५५॥

उस मूर्ख से मेरा यह उदार संदेश मुँहसे ही कहना कि सीताजी को देकर हम से मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया है।

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुनगाथा॥
कहत रामजसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥

लक्ष्मणजी के चरणों में झट मस्तक नवाकर और उनके गुणों की कथा कहते हुए वे भेदिये तुरंत ही चल दिये। श्रीरामचन्द्रजी का यश वर्णन करते हुए वे लंका में पहुँचे और वहाँ उन्होंने रावण के चरणों में सिर नवाया।

बिहँसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुशलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥

हँसकर रावण ने समाचार पूछा कि हे शुक, तू अपनी कुशलता क्यों नहीं कहता ? फिर विभीषण का वृत्तांत भी कह जिसकी मृत्यु अत्यंत समीप आ गई है।

करत राजु लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन कालप्रेरित चलि आई॥

वह दुष्ट लंका को जहाँ वह राज करता था छोड़कर चला गया। अब वह अभागा जौका कीड़ा (घुन) बनेगा—अर्थात् जैसे अनाज के साथ घुन पिस जाता है वैसे ही वंदर और भालुओं के साथ वह भी मारा जाएगा। फिर रीछ और बंदरों की सेनाका हाल वतला, जो निष्ठुर काल की प्रेरणा से चली आई है—

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयेउ मृदुचित सिंधु विचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी

पर जिनके प्राणों का रक्षक वेचारा कोमलचित्त समुद्र हो रहा है (समुद्र न होता तो अब तक यहाँ पहुँचकर वे सब मारे जाते)। फिर उन तपस्वियों (राम-लक्ष्मण) का वृत्तान्त भी कह, जिनके हृदय में मेरा वड़ा डर वैठा हुआ है।

दो०—की भइ भेंट कि फिरि गए, श्रवन सुजस सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, बहुत चकितचित तोर॥५६॥

क्या उन से तेरी भेंट हुई या वे कानों से मेरा सुयश सुनकर ही लौट गए ? तू शत्रु की सेना का तेज और वल क्यों नहीं वतलाता ? तेरा चित्त वहुत घवराया हुआ है !

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा

शुक नामक भेदिये ने कहा—हे नाथ जैसे कृपा करके आपने पूछा है वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मान लीजिये। आपका छोटा भाई विभीषण जब जाकर श्रीरामचन्द्रजी से

मिला तव जाते ही उन्होंने उसे राज-तिलक कर दिया।

रावन दूत हमहिं सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥

यह सुनकर कि हम रावण के दूत हैं वंदरों ने हमें बाँध कर, नाना प्रकार के दुःख दिये और जव वे हमारे नाक-कान काटने लगे तो हमने श्रीरामचन्द्रजी की शपथ दिलाई, तब हमें छोड़ा।

पूँछेहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥

हे नाथ, श्रीरामचन्द्रजी की सेना के विषय में जो आपने पूछा है (कि कितनी है और कैसी है) सो उनका वर्णन तो सौ करोड़ मुखोंसे भी नहीं किया जा सकता। रीछ और बंदरोंकी सेना अनेक रंगोंकी, डरावने मुखों वाली, वहुत वड़ी और भयानक है।

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि वल थोरा
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग वल बिपुल बिसाला

जिस वानर ने आपका नगर जलाया था और आपके पुत्र को मार डाला था, वह वानरों में सव से थोड़े वल वाला है। वहाँ अनेक नामों वाले वे बड़े कठिन और भयंकर योद्धा हैं, जिनमें असंख्य हाथियों का वल है और जो अत्यन्त विशाल हैं।

दो०—द्विबिद मयंद नील नल, अंगदादि बिकटासि।
दधिमुख केहरि कुमुद गव, जामवंत बलरासि॥५७॥

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, विकटास्य, दधिमुख, केहरि, कुमुद, गव और बलवान् जांबवान हैं।

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
रामकृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहिं गनहीं॥

ये सब वानर सुग्रीव के समान (बलशाली) हैं। इनके

समान करोड़ों और हैं, उन सबको कौन गिने ? श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से उन सब को अतुल बल प्राप्त है और वे तीनों लोकों को तिनके के समान तुच्छ समझते हैं।

अस मैं श्रवन सुना दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर ॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहिं जीतै रन माहीं ॥

हे रावण, मैंने ऐसा कानों से सुना है कि १८ पद्म केवल वंदरों के सेनापति ही हैं (फिर सेना की गणना कौन करे ?) हे नाथ, सेना में एक भी वंदर ऐसा नहीं है जो युद्ध में अपको न जीत सके।

परम क्रोध मींजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा ॥
सोषहिं सिंधु सहित झष व्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला

अत्यन्त क्रोध में भरे हुए सब हाथ की मुट्ठियाँ मींचते थे परन्तु श्रीरामचन्द्रजी उन्हें आज्ञा नहीं देते। "(यदि आज्ञा हो तो) साँप, मछली आदि सभी जंतुओं समेत समुद्र को सुखा डालें, या बड़े बड़े पर्वतों से उसे पाट दें।

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा ॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका ॥

रावण को मसल कर धूल में मिला दें"—सभी वंदर इसी प्रकारकी बातें करते थे। वे स्वभाव से ही निडर होने से ऐसे गरजते और ललकारते थे मानों लंका को ही खा जाना चाहते हों।

दो०—सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ, जीति सकहिं संग्राम ॥५८॥

एक तो सब रीछ और वानर स्वभाव से शूरवीर हैं, फिर उनके सिर पर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हैं। इसलिये हे रावण, संग्राम में वे करोड़ों कालों को जीत सकते हैं!

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई ॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहिं पूँछेउ नयनागर ॥

श्रीरामचन्द्रजी के तेज, बल और बुद्धि की सीमा का सौ हज़ार शेषनाग भी गान नहीं कर सकते। यद्यपि वे एक बाण से सैकड़ों समुद्रों को सुखा सकते हैं, तो भी नीति में निपुण श्रीराम-चन्द्रजीने आपके भाई विभीषणसे समुद्र पार होनेका उपाय पूछा।

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। माँगत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहँसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा

और उस (विभीषण) के वचन सुनकर मन में दया रखते हुए उन्होंने जाकर समुद्र से रास्ता माँगा। शुक के वचन सुन कर रावण हँसने लगा और बोला कि जब ऐसी बुद्धि है तभी तो उन्होंने वानरों को अपना सहायक बनाया है।

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥

स्वभाव से ही डरपोक विभीषण के वचनों पर विश्वास करके समुद्र से हठ बाँध ली। अरे मूर्ख, तू झूठी बड़ाई क्या करता है? शत्रु के बल और बुद्धि की थाह मैंने पा ली है।

सचिव सभीत बिभीषनु जाकें। बिजय-बिभूति कहाँ लगि ताकें
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी

जिसका मंत्री डरपोक विभीषण हो, भला उसको विजयश्री कहाँ तक मिल सकती है! दुष्ट रावण के वचन सुनकर दूत का क्रोध बढ़ा और अवसर विचारकर उसने चिट्ठी निकाली।

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बँचावन॥

(और कहा)—हे नाथ, श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी ने यह चिट्ठी दी है, इसे पढ़वाकर छाती ठंडी कीजिये। रावण ने हँसकर वह चिट्ठी बाएँ हाथ में (निरादर पूर्वक) ले ली और मंत्री को बुलाकर वह दुष्ट उसे पढ़वाने लगा।

दो०—बातन मनहिं रिझाइ सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि, सरन विष्णु अज ईस ॥५९॥

चिट्ठी में लिखा था—अरे दुष्ट, बातों से ही मन को रिझाकर अपने कुल को नष्ट मत कर। श्रीरामचन्द्रजी से विरोध करके तू ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शरण में जाने पर भी न बचेगा।

की तजि मान अनुज इव, प्रभु पदपंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल, खल कुल सहित पतंग ॥६०॥

या तो अपने छोटे भाई विभीषण की भाँति अभिमान छोड़कर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों का भौंरा बन जा, नहीं तो हे दुष्ट! तू श्रीरामचन्द्रजी के बाणरूपी अग्नि में अपने कुल समेत पतंगा बन (अर्थात् नष्ट हो) जाएगा।

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहिं सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बागबिलासा॥

चिट्ठी सुनते ही रावण मन में तो डरा परन्तु ऊपर से मुस्कराकर सब को सुनाकर कहने लगा—छोटे तपस्वी (लक्ष्मण) का बकवाद वैसा ही है जैसे पृथिवी पर पड़ा हुआ कोई अपने हाथों से आकाश को पकड़ना चाहता हो।

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाँड़ि प्रकृति अभिमानी
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा

शुक ने कहा—हे नाथ, उसकी सब बातें सत्य हैं, आप अपने अभिमानी स्वभावको त्यागकर समझिये और क्रोध छोड़कर मेरे वचन सुनिये—हे नाथ, श्रीरामचन्द्रजी से विरोध छोड़िये।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं। उर अपराध न एकउ धरिहीं

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी संपूर्ण लोकों के राजा हैं, तो भी उनका

स्वभाव अति कोमल है। मिलते ही (शरण में जाते ही) प्रभु आप पर कृपा करेंगे और आपके एक भी अपराध का ध्यान नहीं करेंगे।

जनकसुता रघुनाथहिं दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे ॥
जब तेहि कहा देन बैदेही। चरनप्रहार कीन्ह सठ तेही ॥

हे स्वामी, आप मेरा इतना ही कहना मानिये कि जानकीजी श्रीरामचन्द्रजी को दे दीजिये। शुक ने जब जानकीजी को देने के लिये कहा, तब दुष्ट रावण ने उसे लात मारी।

नाइ चरन सिरु चला सो तहवाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहवाँ ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। रामकृपाँ आपनि गति पाई ॥

रावण के चरणों में सिर नवाकर वह शुक वहाँ चला गया जहाँ कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी थे। वहाँ पहुँचकर शुक ने श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करके अपनी कथा सुनाई और उनकी कृपा से वह अपना वास्तविक रूप पा गया।

रिषि अगस्ति कैं साप भवानी। राछस भयेउ रहा मुनि ग्यानी ॥
बंदि रामपद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा ॥

शिवजी कहते हैं कि हे भवानी, शुक पहले एक ज्ञानी मुनि था, पर अगस्त्य ऋषि के शाप से वह राक्षस हो गया था। (फिर अपना पूर्वरूप पाकर) श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की बारम्बार वंदना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया।

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥६१॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी को समुद्र के किनारे बैठे बैठे तीन दिन बीत गए पर मूर्ख समुद्र ने विनय नहीं सुनी। तब श्रीरामचन्द्रजी क्रोध में भरकर बोले कि भय दिखाए बिना प्रीति नहीं होती।

लछिमन बान सरासन आनू। सोषउँ बारिधि बिसिखकृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती ॥

हे लक्ष्मणजी, धनुष और बाण लाओ। अब मैं अपने बाण की अग्नि से समुद्र को सुखाता हूँ। दुष्ट से नम्रता, कुटिल से प्रेम, स्वभाव से ही कृपण मनुष्य से सुन्दर नीति,

ममतारत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥

ममता में अनुरक्त मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यन्त लोभी से वैराग्य की व्याख्या, क्रोधी से शांति की बात और कामी मनुष्य से हरिभजन के लिये कहना वैसा ही व्यर्थ है जैसे ऊसर भूमि में फल के लिये बीज बोना।

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने धनुष चढ़ाया। यह विचार लक्ष्मणजीके मन को बहुत प्रिय लगा। प्रभु ने भयानक बाण को धनुष पर चढ़ाया। उससे समुद्र के हृदय में ज्वाला उठने लगी।

मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनकथार भरि मनि गन नाना। बिप्ररूप आयेउ तजि माना॥

मगर, सर्प और मछलियों के समूह व्याकुल हो गए, समुद्र ने जब जाना कि सब जंतु जल रहे हैं, तब अभिमान छोड़, सोने के थाल में तरह तरह की मणियों को भरकर ब्राह्मण का रूप धारण करके वहाँ आया।

दो०—काटेहिं पइ कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मानं खगेस सुनु, डाटेहिं पै नव नीच॥६२॥

काकभुशुंडीजी कहते हैं कि हे गरुड़, सुनो! चाहे कोई करोड़ उपायों से केले को सींचे, पर वह काटने पर ही फलता है। इसी प्रकार नीच मनुष्य विनय नहीं मानता, डाँटने पर ही झुकता है।

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कै नाथ सहज जड़ करनी॥

भयभीत समुद्रने प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरण पकड़कर कहा कि हे नाथ, मेरे सब अवगुण क्षमा करो। आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी इनकी करनी (कार्य) स्वभाव से ही जड़ है।

तव प्रेरित माया उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥

इन पाँचों तत्त्वों को आपकी प्रेरणा से माया ने उत्पन्न किया है, सब ग्रंथों ने इन्हें ही सृष्टि का कारण कहा है। आपकी जिसके लिये जैसी आज्ञा हो वह उसी प्रकार रहनेसे सुख प्राप्त करता है।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरिअ कीन्ही
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी

हे प्रभु! आपने अच्छा किया जो मुझको शिक्षा दी, परन्तु मेरी मर्यादा भी तो आप ही की बनाई हुई हैं। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री ये सब ताड़ना के अधिकारी हैं—डंडे के बल से ही काम करते हैं।

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु आग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहिं सोहाई॥

प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जाएगी। किंतु मेरी बड़ाई न रहेगी (आपने मेरे साथ जो यह बड़प्पन लगा दिया है, कि समुद्र अथाह, अशोष्य और मर्यादा-संपन्न होता है वह सार्थक न हो सकेगा अर्थात् आप अपने बनाए नियम को स्वयं तोड़ देंगे)। हे प्रभु! आपकी आज्ञा वेदों ने अटल कही हे (मुझे भी माननी ही पड़ेगी। आपको जो अच्छा लगे मैं शीघ्र ही करने को तैयार हूँ)।

दो०—सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपालु मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ ॥६३॥

समुद्र के अत्यन्त नम्र वचन सुनकर कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ने मुस्करा कर कहा कि हे तात, जिस प्रकार वानरों की सेना पार उतर सके वही उपाय बताओ।

नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई
तिन्ह के परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे

समुद्र ने कहा—हे नाथ ! नील और नल दोनों वानर भाइयों ने लड़कपन में ऋषि का आशीर्वाद पाया है (कि वे जिस वस्तु को छू लेंगे वह जल में तैरा करेगी)। उनके छूने से बड़े बड़े पहाड़ भी आपके प्रताप से समुद्र में तैर जाएँगे।

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ

फिर मैं भी आपकी बड़ाई को ध्यान में रखता हुआ अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करूँगा। हे नाथ ! इस प्रकार समुद्र का पुल बँधाइये जिससे आपका सुयश तीनों लोकों में गाया जाए।

एहिं सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा

हे नाथ ! (आपका बाण निष्फल नहीं जाता इसलिये) इस बाण से मेरे उत्तर किनारे पर बसने वाले दुष्ट और पापी मनुष्यों को मार डालिये। दयालु और रणधीर श्रीरामचन्द्रजी ने सागर के मन की पीड़ा सुनकर उसे तुरंत दूर कर दिया।

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयेउ सुखारी
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा

श्रीरामचन्द्रजी का भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र प्रसन्न

होकर सुखी हुआ। फिर उसने अपना चरित्र प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को सुनाया और उनके चरणों की वंदना करके चला गया।

छन्द—निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहिं यह मत भायेऊ।
यह चरित कलि-मल-हर जथामति दास तुलसी गायेऊ॥
सुख-भवन संसय-समन दमन-बिषाद रघुपति-गुन-गना।
तजि सकल आस भरोस गावहिं गुनहिं संतत सुठि मना॥

समुद्र अपने स्थान को गया, उसकी संमति श्रीरामचन्द्रजी को अच्छी लगी। यह कलियुग के पापों को हरने वाला चरित्र तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है। निर्मल चित्त वाले मनुष्य अन्य सब की आशा और भरोसा छोड़कर, सुख के धाम, संशयों को दूर करने वाले और दुःखों के नाश करने वाले श्रीरघुनाथजी के गुण समूह को सदा गाते और सुनते हैं।

दो०—सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन-गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलजान॥६४॥

श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का गान करना सब प्रकार के कल्याण को देने वाला है। जो लोग इस गुण-गान को आदर-पूर्वक सुनते हैं, वे संसाररूपी समुद्र से बिना नाव के ही पार हो जाते हैं।

॥ समाप्त ॥

परिशिष्ट

पौराणिक नाम और कथाएँ

अगस्ति = अगस्त्य। ये महर्षि वेदों के एक मन्त्र-द्रष्टा ऋषि थे। ये और वसिष्ठ ऋषि दोनों मित्र और वरुण के पुत्र थे। अगस्त्यजी की उत्पत्ति के विषय में कथा है कि आकाश में जाते हुए उर्वशी नाम की अनुपम सुंदरी अप्सरा को देख कर मित्र और वरुण का वीर्य स्खलित हो कर एक घड़े में जा गिरा। उस मे एक मछली उत्पन्न हुई जो बहुत छोटी सी थी। उसे एक सर में रखा गया जहाँ वह बढ़ कर पीछे मे अगस्त्य मुनि बन गई।

एक बार विन्ध्याचल को ईर्ष्या हुई कि सूर्य, चन्द्र आदि सभी देवता सुमेरु की नाईं मेरी प्रदक्षिणा क्यों नहीं करते ? इस लिये उनका मार्ग रोकने के लिये वह बढ़ने लगा। सूर्य का मार्ग रुक जाने से सारे संसार में अन्धकार फैल गया। तब सभी देवता महर्षि अगस्त्य की शरण में गए। महर्षि अगस्त्यजी अपनी धर्म-पत्नी लोपा-मुद्रा के साथ विन्ध्याचल के पास गए। विन्ध्याचल शाप के भय से उनके चरणों में गिर गया और उसने कहा मेरे योग्य सेवा बताइये। अगस्त्यजी ने कहा—"जब तक मैं न लौटूँ तब तक तुमने इसी तरह पड़े रहना"। अगस्त्यजी उज्जयिनी की ओर चले गए और कभी न लौटे। तभी से विन्ध्याचल ज्यों का त्यों पड़ा है।

एक बार देवासुर संग्राम में दैत्य समुद्र में छिप गए तो देवताओं ने अगस्त्यजी से सहायता मांगी। अगस्त्यजी तीन चुल्लुओं में सारा समुद्र पी गए और देवताओं ने दैत्यों को ढूंढकर परास्त किया। इसी लिये इन्हें समुद्र-चुलुक भी कहते हैं। इस नाम का एक तारा भी है। इन्होंने शुक को शाप भी दिया था (देखो—**सुक**)।

अङ्गद—कपिराज बालि के पुत्र का नाम है जिसे उसके पिता के मरने के पश्चात् सुग्रीव का मन्त्री बनाया गया। रामायण में रावण के साथ इसका संवाद प्रसिद्ध है।

अच्छकुमार=अक्षकुमार रावण के ज्येष्ठ पुत्र का नाम है जिसे हनुमानजी ने मार दिया था। यह मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। रावण से युद्ध करने से पहिले श्रीरामचन्द्रजी ने रावण को समझाने और उससे सन्धि करने के लिये इसे दूत बनाकर लंका में भेजा था।

अपवर्ग—मुक्ति, मोक्ष। हिन्दू-धर्म में मनुष्य-मात्र के लिये चार फल प्राप्तव्य होते हैं जिनके नाम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। इन चारों को चतुर्वर्ग भी कहते हैं।

अशोक—वृक्ष का नाम है। रामायण में श्रीरामचन्द्रजी इसे लक्ष्य करके अपनी वेदना सुनाते हैं। संस्कृत-साहित्य में वसन्त-ऋतु के वर्णन में इसका स्थान विशेष महत्ता रखता है। रावण ने जिस उद्यान में सीता जी को बन्दी किया था उसका नाम अशोकवाटिका था। और सीताजी इसी वृक्ष के नीचे अपने विरह के दिन काटती रहीं।

अहिपति—पाताल लोकमें सांपोंके राजा शेषनागका नाम है। पुराणों में इसे कश्यप और कद्रु का पुत्र कहा है। प्रलय के पश्चात् दूसरी सृष्टि की उत्पत्ति तक क्षीर सागर मे भगवान् विष्णु इसी के शरीर पर शयन करते हैं और यह अपनी सहस्रों फणाओं को उनके सिर पर छत्र के समान

फैलाए रहता है। इस ने सारी पृथ्वी को धारण कर रखा है और जब भी जंभाई लेता है संसार में भूचाल आ जाता है। समुद्र-मथन के समय देवताओं ने शेषनाग को ही रस्सी बना लिया था और इसे मंदर पर्वत के चारों ओर लपेट कर समुद्र को मथा था।

इन्द्र-जित्—रावण के पुत्र मेघनाद का नाम है। रावण ने जिस समय इन्द्र के स्वर्ग पर चढ़ाई की तो मेघनाद वहाँ बड़ी वीरता से लड़ और जब उसने इन्द्र को रण-भूमि में आते देखा तो शिवजी के दिये वर के प्रताप से अदृश्य होकर उसे बंदी बना लिया और लंका में ले आया। फिर इन्द्र को छुड़ाने के लिये देवताओ समेत ब्रह्माजी स्वयं मेघनाद के पास गए और उसे इन्द्रजित् की उपाधि प्रदान की।

ईस=ईश शिवजी का अन्य नाम है। वेद में रुद्र देवता का नाम आता है उसी से पौराणिक त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—के शिव का विकास हुआ है। जैसे ब्रह्मा सृष्टि की उत्पत्ति और विष्णु उसकी स्थिति और पालन का कारण हैं, वैसे ही महाकाल के रूप में शिव सृष्टि के संहार अथवा प्रलय का हेतु है। आर्य-मत के अनुसार प्रलय ही उत्पत्ति का साधन अथवा पूर्व-रूप है, इस लिये शिव अपने शंकर रूप में सृष्टि का पुनरुत्पादक और कल्याण-कर्त्ता है। इसी लिये इसे ईश, ईश्वर और महादेव भी कहते हैं। उत्पादक होने के कारण ही इसकी 'लिंग' रूप में पूजा होती है। पार्वती इसकी शक्ति का नाम है।

कमठ—कछुआ। यहां भगवान् विष्णु के दूसरे अवतार अर्थात् कूर्म अवतार से अभिप्राय है। प्रलय में जब सब कुछ नष्ट हो गया तो समुद्र में से खोए हुए रत्नों को निकालने के लिये देवताओं और असुरों ने प्रयत्न किया। तब विष्णु भगवान् कछुए का रूप धारण करके क्षीर-समुद्र के तल में बैठ गए। उनकी पीठ पर मन्दर पर्वत रखा गया। जिसके चारों ओर शेषनाग को रस्सी के समान लपेट कर समुद्र को मथ कर

चौदह रत्न निकाले गए। इस पौराणिक कथा का बीज शत-पथ-ब्राह्मण में मिलता है, जहां लिखा है कि प्रजा-पति ने कछुए का रूप धारण करके प्रजा को उत्पन्न किया।

सब से नीचे कछुआ है। उसके ऊपर शेषनाग है और शेष-नाग की सहस्र फणाओं पर पृथिवी स्थित हुई है।

किंनर—एक योनि-विशेष जिन का शरीर मनुष्यों का और सिर घोड़े का होता है। ये कैलाश पर कुबेर-पुरी में रहते हैं। एक उपाख्यान के अनुसार ये और यक्ष दोनों ही ब्रह्मा के पांव के अंगूठे से उत्पन्न हुए थे, किन्तु एक दूसरा उपाख्यान इन्हें कश्यप की सन्तान बताता है। ये देवताओं के गायक हैं।

खर—यह शूर्पणखा का भाई था। चौदह सहस्र राक्षसों को लेकर यह अपने भाई रावण की आज्ञा से जनस्थान की रक्षा करता था। बहन की नाक कान काटने की बात सुनकर यह अपनी सेना के साथ श्रीरामचन्द्रजी से लड़ा। वहीं अपनी सेना और दूषण आदि वीर सेनापतियों के साथ मारा गया।

गंधर्व—ये अन्तरिक्ष अथवा आकाश में रहते हैं। इन्द्र की स्वर्गपुरी अमरावती में भी इनका वास है और ये देवताओं के सभी उत्सवों पर नाचने गाने का काम करते हैं। स्त्रियों से इन्हें विशेष प्रेम होता है। अप्सराएं इनकी प्रेयसियां होती हैं। विष्णु-पुराण में एक स्थान पर लिखा है कि गंधर्व ब्रह्मा से उत्पन्न हुए और दूसरे स्थान पर इन्हें कश्यप की अरिष्टा नाम्नी पत्नी से उत्पन्न हुए बताया है। इसी प्रकार हरि-वंश पुराण में भी इन्हें एक स्थान पर ब्रह्मा की नाक से और दूसरे पर कश्यप और उसकी दूसरी पत्नी मुनि से उत्पन्न हुए बताया गया है।

गरुड़—यह विष्णु भगवान् का वाहन है। इसका शरीर मनुष्य का और चोंच, पंख, सिर और नख पक्षी के हैं। यह पक्षियों का राजा है

और कश्यप तथा दक्ष प्रजापति की पुत्री विनता का बेटा है। यह सांपों का घोर शत्रु है क्योंकि इसकी माता का अपनी सपत्नी और सांपों की माता कद्रु से द्वेष हो गया था। एक वार अपनी माता को कद्रु के बन्धन से मुक्त कराने के लिये यह स्वर्ग से अमृत चुरा लाया था। इन्द्र को पता लगने पर इसका इन्द्र के साथ घोर युद्ध हुआ, जिसमें इन्द्र अमृत तो छीन कर लौटा ले गया, पर बुरी भांति घायल हुआ और उसका वज्र भी टूट गया।

प्रभुप्रताप तें गरुड़हिं, खाइ परम लघु ब्याल। (पृष्ठ २३)

एक बार विष्णु भगवान के शरण गये हुए सर्प को उनके वाहन गरुड़ ने खाने की इच्छा की। पर विष्णु ने सर्प को इतना समर्थ बना दिया कि वह गरुड़ को ही खाने को दौड़ा। तब गरुड़ के प्रार्थना करने पर भगवान् ने उन्हें सांप से छुड़ाया।

गिरिंदा=गिरीन्द्र मेरु अथवा सुमेरुपर्वत का नाम है क्योंकि इसे पर्वतों का राजा माना गया है। कहते हैं कि यह ब्रह्माण्ड की नाभि में स्थित है और इन्द्र का स्वर्ग इसी के ऊपर है। यह स्वर्ण का बना हुआ पहाड़ है। यदि पृथिवी पर इसकी स्थिति मानी जाए तो इसे हिमालय के उत्तर में कहीं होना चाहिये।

भए पच्छजुत मनहुँ गिरिन्दा। (पृष्ठ ४५)

कथा है कि पहले पर्वतों के पक्ष हुआ करते थे और ये उड़ कर जहां जी चाहे जा सकते थे। जब इस प्रकार ये बहुत उपद्रव मचाने लगे तो इन्द्र ने अपने वज्र से इनके पंख काट दिये और तब से ये अचल हो गए।

चउथि का चाँद—भाद्र-पद मास की चतुर्थी तिथि के चन्द्रमा को देखना अपशकुन समझा जाता है। जिसको वह दिखाई पड़ जाए

उसे कोई न कोई झूठा कलंक लग जाता है और उसके घर में कलह और द्वेष रहता है। कहते हैं कि एक बार श्रीकृष्णजी ने यमुना के किनारे गौएं चराते हुए एक गो-पद में पड़े हुए पानी में से चौथ के चांद की परछांई देख ली थी इसी लिये उन पर 'स्यमन्तक' नाम की मणि चुराने का झूठा कलंक लगा था। कथा इस प्रकार है। निघ्न के पुत्र सत्राजित् ने भगवान् सूर्य की स्तुति करके उनसे 'स्यमन्तक' नाम की मणि प्राप्त की। इस भय से कि कहीं श्रीकृष्णजी वह मणि उससे न ले लें, उसने वह मणि अपने भाई प्रसेन को दे दी। मणि में एक विचित्र गुण था कि जिसके पास वह होती थी यदि वह सत्पुरुष होता तो उसकी रक्षा करती थी और यदि दुर्जन होता तो उसकी मृत्यु हो जाती थी। प्रसेन बड़ा दुष्ट था। इस लिये एक सिंह ने उसे मार डाला। और वह सिंह मणि को अपने मुख में ले कर चल दिया। आगे जाकर उसकी भेंट रीछों के राजा जाम्बवान् से हुई जिस ने उस सिंह को मार डाला। जब सत्राजित् को प्रसेन का कोई पता न चला तो उसे संदेह हुआ कि श्रीकृष्णजी ने उसे स्यमंतक मणि के लिये मार डाला है। यह सुन कर श्रीकृष्णजी ने प्रसेन को ढूँढना आरंभ किया और अंत में पता चलने पर कि वह एक सिंह से मारा गया है और उस सिंह को भी जाम्बवान् ने मार कर मणि ले ली है, वे सेना सहित जाम्बवान् की गुफा को गए। सेना को बाहर रखकर स्वयं उसकी गुफा में घुसे जहाँ कई दिन तक घोर युद्ध होता रहा। श्रीकृष्णजी के साथियों ने सात आठ दिन तक प्रतीक्षा की और फिर उन्हें मरा समझ घर लौट गए और वहाँ उनका अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया। इक्कीस दिन के युद्ध के पश्चात् जाम्बवान् ने हार मानी और स्यमंतक मणि तथा अपनी बेटी जांबवती दोनों को ही श्रीकृष्णजी की भेंट कर दिया। इसी जाम्बवान् ने रावण के विरुद्ध श्रीरामचन्द्रजी की सहायता की थी। श्रीकृष्णजी ने स्यमंतक

मणि सत्राजित् को लौटा दी और उस के बदले सत्राजित् ने अपनी बेटी सत्य-भामा का विवाह श्रीकृष्णजी से कर दिया।

यदि चौथ का चांद कोई देख ले तो इस अपशकुन को दूर करने के लिये ऊपर लिखी कथा सुननी पड़ती है और अंधाधुंध आकाश में पत्थर चलाने पड़ते हैं, चाहे वे किसी के लग जाएं। इसी लिये इसे पत्थर चौथ भी कहते हैं। पंजाब के लोग कथा सुनकर और पत्थर चला कर मुख से यह लोकोक्ति भी कहते हैं :—

चौथ दा चंद, हाथी दा दंद।
राजे दी बेटी ने चूड़ा पाया,
सानूँ औगुण कोई न आया॥

चन्द्र-हास—इस नाम का खड्ग रावण को शिवजी ने दिया था। कथा ऐसे है। अपने भाई कुबेर से छीने हुए पुष्पक विमान पर चढ़ कर रावण कैलाश-पर्वत के उपवन की ओर, जिस में भगवान् शंकर पार्वती के साथ विहार कर रहे थे, जा रहा था। एकाएक उसके विमान की गति रुक गई, वह चकित हो गया। शिवजी के प्रधान गण नंदीश्वर ने कहा कि मैंने तेरा विमान रोका है, तू आगे नहीं जा सकता। उसका विकट रूप देख कर रावण को बड़ी हंसी आई। उसे हंसते देख कर नन्दी ने कहा, "तुम मेरे वानर रूप को देख हंस रहे हो, इस लिये वानर ही तुम्हारे वंश का नाश करेंगे।" रावण ने उसकी बात की उपेक्षा कर के, अपनी बांह नीचे देकर समूचा कैलाश-पर्वत उठा लिया। शिवजी के गण कांपने लगे और पार्वतीजी शिवजी के शरीर से लिपट गईं। शिवजी ने अपने बाएं अंगूठे से कैलाश को दबाया, जिससे रावण की भुजाएं मरमरा उठीं। उसने बड़ा भयंकर चीत्कार करके शिवजी की स्तुति की और बड़ा रोया। तब शंकरजी ने प्रसन्न होकर उसे छोड़ दिया और चंद्र-हास नाम का खड्ग दिया। रावण ने सीताजी को इसी खड्ग से मारने की धमकी दी थी।

जयंत—पादुका लेकर भरत के लौट जाने पर एक दिन श्रीरामचन्द्र जी ने सुन्दर फूलों के आभूषण बना कर अपने हाथों से सीताजी का शृंगार किया। देवराज इन्द्र के पुत्र जयंत ने कौए का रूप धारण कर के श्रीरामचन्द्रजी का बल देखना चाहा। उसने जाकर सीताजी के पांव में ठूंगा मारा और उड़ चला। जब श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी के पांव से रुधिर बहता देखा तो उन्होंने अपने धनुष पर सरकंडे की सींक का बाण चढ़ा कर उसके पीछे छोड़ा। आगे आगे जयंत और पीछे पीछे सींक का बाण। वह अपने पिता इन्द्र के पास रक्षा के लिये गया, पर पिता ने उसे राम-द्रोही जान कर शरण न दी। वह ब्रह्म-लोक, शिव-लोक आदि समस्त लोकों में फिरा पर किसी ने उसकी बात तक न पूछी। वह अति निराश और भय-भीत हो गया। नारदजी को उसकी व्याकुल दशा देख कर दया आ गई और उन्होंने उसे समझा बुझा कर श्रीरामचन्द्रजी के पास भेज दिया। उसने जाकर प्रभुजी के चरण पकड़ कर क्षमा मांगी। श्रीरामचन्द्रजी ने उसे उस बाण से एक आंख से काना कर के छोड़ दिया। तभी से कौआ काना चला आता है।

जामवंत = जाम्बवत् रीछों का राजा। यह श्रीरामचन्द्रजी की सेना का प्रधान सेनापति था और उन को सदा शुभ परामर्श देता था। (देखो—**चउथि का चाँद**)

त्रिजटा—रावण के अन्तःपुर की एक राक्षसी। यह सीताजी की रक्षा करने के लिये नियुक्त की गई थी। दूसरी राक्षसियों का व्यवहार सीताजी के साथ अत्यन्त निष्ठुर और क्रूर था। परन्तु त्रिजटा की सीताजी में भक्ति थी इस लिये वह सीता के साथ दया-युक्त व्यवहार करती थी।

त्रय-ताप—संसार में तीन प्रकार के दुःख माने जाते हैं—**आधिभौतिक**, आधिदैविक और आध्यात्मिक। पहले शारीरिक (रोग, आदि), दूसरे आकस्मिक (भूंचाल आदि) और तीसरे मानसिक (शोक, चिन्ता, आदि) हैं। इन्हें त्रिविध-भव-सूल भी कहते हैं।

त्रय-लोक—स्वर्ग-लोक, भू-लोक (पृथिवी) और पाताल-लोक।

त्रिशिरा—रावण का पुत्र अथवा मित्र जिसे श्रीरामचन्द्रजी ने मार डाला था।

दंडक—राजर्षि इक्ष्वाकु के एक पुत्र दण्डक नाम का भी था। वह बड़ा उद्दंड, क्रूर और दुराचारी था। उसे विंध्याचल और नीलगिरि का राज्य दिया गया। दंडक एक दिन अपने गुरु शुक्राचार्य के आश्रम में गया और उनकी बड़ी लड़की अरजा पर आसक्त हो गया। अरजा ने उसका प्रेम-प्रस्ताव ठुकरा दिया, तब उसने उससे बलात्कार किया। अरजा ने अपने पिता से सब बात कही। शुक्राचार्यजी ने शाप दिया कि ऐसे अत्याचारी राजा का राज्य नष्ट हो जाए और धूल और पत्थर की वर्षा से इन्द्र सारे प्रदेश को उजाड़ दे। राजा को यह शाप देकर ऋषि ने सारे राज्य में घोषणा कर दी कि जो अपनी रक्षा चाहते हों वे इसके राज्य से निकल जाएं। सातवें दिन वह राज्य पशु पक्षियों रहित धूलिमय हो गया और उसका नाम दण्डकारण्य पड़ा। श्रीरामचन्द्रजी की चरण-रज से वह स्थान फिर पवित्र हो गया।

दिग्गज—दिशाओं के हाथी आठ होते हैं जिनके नाम ये हैं—ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक।

दिसिप = दिशिप, दिक्-पाल। दश दिशाओं के अधिपति। क्रम से वे ये हैं। पूर्व का इन्द्र, अग्नि-कोण का अग्नि, दक्षिण का यमराज, नैर्ऋत्य-कोण का नैर्ऋत्य, पश्चिम का वरुण, वायव्य-कोण का पवन, उत्तर का कुबेर, ईशान-कोण का महादेव, ऊपर की दिशा का ब्रह्मा और नीचे की दिशा का विष्णु।

दूषण—यह रावण का एक सेनापति था और रावण के भाई खर का साथी था।

नन्दन—स्वर्ग में इन्द्र का उद्यान जो मेरु पर्वत के उत्तर में है।

नरक—यह यातना लोक है, जहां दुष्ट और पापी लोग मर कर अपने पापों का दंड भोगते हैं। मनुजी ने इक्कीस नरकों के नाम गिनाए हैं। कई आचार्यों का इनके नाम और संख्या के विषय में मत-भेद है।

नल-नील—ये दोनों भाई विश्व-कर्मा के वानर पुत्र थे। बचपन में ये बड़े नटखट थे जब ऋषि-मुनि ध्यान में मग्न होते तो वे चुपके से दबे पांव आते और उनकी ठाकुरजी की मूर्तियां उठा कर जल में फेंक देते। वात्सल्य स्नेह के कारण वे इन्हें कुछ न कहते। जब इनका उपद्रव बहुत बढ़ गया तब एक दिन ऋषियों ने परामर्श करके शाप के रूप में ऐसा आशीर्वाद दे दिया कि इनके हाथ से जिस वस्तु का स्पर्श हो जाए वह चाहे कितनी भारी हो, जल में न डूबे। इससे उनकी फेंकी हुई मूर्त्तियां तैरती रहतीं और ऋषि लोग उन्हें फिर निकाल लाते। यही आशीर्वाद सेतु-बन्धन के समय बहुत काम आया।

नारद—नारदजी ने भगवान् व्यासदेवजी को अपनी कथा ऐसे सुनाई थी। "पहले जन्म में मेरी माँ एक दासी थी और चौमासे में ऋषियों की सेवा किया करती थी। मैं एक समय ऋषियों की झूठन खाता और भगवान् के गुण-गान की चर्चा उनके मुख से सुनता। मेरी रुचि धर्म में हो गई और मेरा हृदय पवित्र हो गया। मैं पांच वर्ष का हुआ तो सांप काट जाने से मेरी माता की मृत्यु हो गई और मैं हिमालय पर्वत पर जाकर एक पीपल के नीचे बैठ कर ध्यान करने लगा, किंतु ध्यान जमा नहीं। इतने में आकाश-वाणी हुई कि इस जन्म में तुझे भगवद्-दर्शन नहीं होंगे, अगले में होंगे। मैं मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहा और मरने पर मरीचि आदि ऋषियों के साथ ब्रह्मा से मेरी उत्पत्ति हुई। तभी से वीणा पर भगवान् के नाम, गुण और लीलाओं का कीर्तन करता हुआ त्रिलोकी में विचरण करता हूँ।"

प्रजा-पतियों और सप्तर्षियों में से एक नारदजी भी हैं। ऋग्वेद के सूक्तों के रचयिता भी हैं। विष्णु-पुराण में इन्हें कश्यप और दक्ष प्रजा-पति की एक कन्या का पुत्र कहा है। ऊपर की कथा के अनुसार इन्होंने ही वीणा का आविष्कार किया था। ये प्रायः भविष्य की बातें बता दिया करते थे। इन्होंने कंस को चेतावनी दी थी कि वसुदेव के घर विष्णु भगवान् अवतार लेंगे। पार्वतीजी के जन्म पर इन्होंने उनके पिता हिमालय से कहा था कि इस लड़की का पति शिव होगा। सीताजी जब अपनी वाटिका में गिरिजा पूजन करने जा रही थीं तो उन्हें मार्ग में नारदजी मिल गए। सीताजी के प्रणाम करने पर नारदजी ने आशीर्वाद दिया कि इस वाटिका में ही तुम्हें अपने स्वामी के दर्शन हो जाएँगे।

एक बार इन्हें अपने ब्रह्मचर्य पर बहुत अभिमान हो गया। विष्णु भगवान् ने अपने भक्त का मद दूर करने के लिये माया जाल बिछाया। नारदजी कहीं जा रहे थे कि इन्हें पता चला कि किसी अत्यन्त सुन्दरी राजकुमारी का स्वयंवर है। उसके सौंदर्य की अत्यधिक प्रशंसा सुनकर इनका मन विचलित हो उठा और सोचा कि बहुत बन ठन के जाना चाहिये। आगे इन्हें विष्णु भगवान् मिल गए। नारदजी ने भगवान् की अनुपम छवि देखकर उनसे उनका "हरि-रूप" मांगा। विष्णुजी ने मान लिया। हरि का अर्थ बंदर भी है। नारदजी का मुख बंदर जैसा हो गया। नारदजी को पता न चला और वे बड़े प्रसन्न होकर स्वयंवर मंडप में जा बैठे और उचक २ कर राजकुमारी की ओर झांकने लगे। सभी लोग इन्हें देखकर हँसते थे। राजकुमारी ने जयमाला विष्णुजी के गले में डाल दी। नारदजी बहुत छटपटाए और सोचने लगे कि दुष्ट विष्णु ने मेरे साथ धोखा किया है। अंत में सूर्य और चन्द्रमा ने उन्हें कहा कि तनिक अपना मुख पानी में झाँक कर तो देखो। नारदजी अपना मुख देख कर बड़े खिसियाने हुए और चन्द्र-सूर्य को ग्रहण लगने का शाप दे दिया। फिर वे विष्णुजी के पीछे शाप देने के लिये भागे। विष्णुजी थोड़ी दूर पर ही

मिल गए। नारदजी ने क्रोध में भर कर शाप दिया कि क्योंकि तुमने मुझे स्त्री के विषय में ठगा है इसलिये तुम भी मनुष्य योनि में पड़कर स्त्री के विरह में दुःख पाओगे और मुझे जो वानर बनाया है सो तुम्हारी सहायता भी वानर ही करेंगे। इस प्रकार नारदजी के शाप-वश विष्णु भगवान् को श्रीरामचन्द्रजी का अवतार लेना पड़ा।

पाताल—पृथिवीके नीचेका लोक जहां नाग, दैत्य, दानव, यक्ष आदि रहते हैं। पुराणों में इनकी संख्या सात कही है। विष्णु-पुराण के अनुसार इनके नाम (१) अतल, (२) वितल, (३) नितल, (४) गभस्तिमत्, (५) महातल, (६) सुतल, और (७) पाताल हैं। कहीं कहीं इनके नाम और संख्या भी भिन्न भिन्न हैं। 'पाताल' जो इनमें सब से नीचे है उसमें सर्प-राज वासुकि का राज्य है। एक बार मुनि नारदजी इन सभी लोकों को देखने गए थे और जब वे वहां से स्वर्ग में लौटे तो उन्होंने इनका बड़ा विशद वर्णन किया है। वे कहते हैं कि ये लोक इन्द्र की अमरावती से भी अधिक सुंदर और रम्य हैं। वहां सब प्रकार की भोग्य सामग्री प्रचुर मात्रा में है। स्वर्ग तो उनके सामने कुछ भी नहीं।

पुरान=पुराण, इनके लक्षणके अनुसार इनमें पांच विषयोंका वर्णन होना चाहिये—(१) सर्ग, (२) प्रलय और सृष्टि, (३) देवताओं और पितरों की वंशावलियां, (४) मन्वन्तर, और (५) सूर्य और चन्द्रवंशीय राजाओं का इतिहास। किंतु किसी भी पुराण में ये पांचों लक्षण नहीं हैं। पुराण अठारह हैं और इनके अतिरिक्त अठारह ही उपपुराण भी हैं। सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणों के प्राधान्य के कारण इनके तीन वर्ग हैं। प्रथम वर्ग में विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड़, पद्म और वराह; दूसरे में ब्रह्म, ब्रह्मांड, ब्रह्म-वैवर्त, मारकण्डेय, भविष्य और वामन; और तीसरे में मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द और अग्नि पुराण हैं।

बडवानल—महाभारत में कथा है कि राजा कृतवीर्य ने अपने भृगु वंश के पुरोहितों को इतना दान दिया कि राजा की मृत्यु के पश्चात् उसके

वंशज क्षत्रिय दरिद्र हो गए। जब क्षत्रियों ने भृगुओं से सहायता मांगी तो उन्होंने न दी और अपना धन भूमि में गाड़ दिया। इस पर क्षत्रियों ने क्रोध के आवेश में आकर गर्भ के बच्चों तक सभी भृगुओं को मार डाला। एक स्त्री ने अपना अजात-गर्भ अपने ऊरु देश में छिपा लिया। पता लगने पर क्षत्रिय उसकी भी हत्या करने लगे, किन्तु बच्चे ने ऊरु-देश से निकल कर अपने असाधारण तेज से क्षत्रियों को अंधा कर दिया। ऊरु देश से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम और्व हुआ। उसने पराकाष्ठा की तपस्या की और क्षत्रियों के विरुद्ध अपनी क्रोधाग्नि को प्रचण्ड रखा। अंत में पितरों के अनुरोध से उसने अपनी उस कोपानल को समुद्र में फेंक दिया जो वहां बडवानल के रूप में रहती है। उसका मुख बडवा अर्थात् घोड़ी के समान है।

वाली—यह किष्किन्धा में वानरों का राजा था। इसने अपने भाई सुग्रीव का राज्य छीन कर उसे निर्वासित कर दिया था। वनवास में सीताजी को ढूंढते हुए श्रीरामचन्द्रजी की सुग्रीव से मित्रता हो गई और उसकी सहायता करने के लिये श्रीरामचन्द्रजी ने वाली को मार कर सुग्रीव का राज्य उसे फिर से ले दिया। वाली इन्द्र का पुत्र था और माता के बालों से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम वाली हुआ। उसकी स्त्री का नाम तारा और पुत्रों का नाम अंगद और तार था।

समर बालि सन करि जसु पावा। (पृष्ठ २९)

बाली के महान् बल-पौरुष की बात सुन कर रावण के मन में बड़ी कुलबुलाहट हुई। उसने सोचा कि उसे परास्त करना चाहिये। एक दिन जब बाली सन्ध्या कर रहा था तो रावण वहां पहुंचा। बाली ने संकेत किया कि सन्ध्या कर चुकने के पश्चात् लड़ लेना। किन्तु रावण ने कहा, 'तुम डर कर बहाना बनाते हो,' और पीछे से जाकर उसे दबोचना चाहा। पर बाली ने उसे वहीं कांख में दबा लिया और नित्य उसे लिये

लिये नियमानुसार चारों समुद्रों पर घूम कर सन्ध्या-वंदन करने लगा। एक बार सूर्य को अर्घ्य देते समय बाली भूल गया कि कांख में रावण है। बाँह उठाते ही रावण छूट गया और बड़ी अनुनय-विनय करके बाली से मित्रता कर ली। तब उसने छुटकारा पाया।

विरंचि—ब्रह्मा। भारतीय त्रिमूर्त्ति में सबसे प्रथम सृष्टि-कर्त्ता ब्रह्मा का स्थान है। शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार स्वयंभू ने सब से पहिले जल की सृष्टि की। फिर उसमें अपना वीर्य रखा जिससे हिरण्य-गर्भ उत्पन्न हुआ और उस अण्डे में से ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्मा का स्थान प्रजापतियों और ऋषियों में सब से प्रथम और मुख्य है। ब्रह्मा की उत्पत्ति विष्णु भगवान् की नाभि से निकले हुए कमल फूल से भी कही है।

बिष्नु = विष्णु। त्रिमूर्ति में विष्णु भगवान् का स्थान दूसरा है। इनका काम सृष्टि का भरण-पोषण है। वेदों में विष्णु का नाम मुख्य देवताओं में नहीं। यह सूर्य देवता का ही एक रूप है। इन्होंने अपने तीन क्रमों में ही विश्व के सातों खण्डों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। धीरे धीरे महाभारत और पुराणों में इन्हें सत्त्व गुण का रूप माना गया है और इसी कारण ये संसार का धारण और पोषण करते हैं। ये सर्व-व्यापक हैं इसी लिये इनका शयन-स्थान जल माना गया है क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति से पहले सब स्थानों पर जल ही जल व्याप्त था। विष्णु भगवान् का नाम नारायण भी इसी कारण से है—(नर = जल, अयन = विचरण) पानी में विचरने वाला। संसार के हितार्थ विष्णु भगवान् ही अवतार लेते हैं। इन्हीं के चरणों से गङ्गा जी का निकास बताया जाता है। श्रीरामचन्द्रजी इन्हीं का अवतार हैं।

भवानी—हिमालय की पुत्री पार्वती और शिवजी की शक्ति अर्थात् पत्नी। पार्वती के दो रूप हैं। एक गौरी अथवा महादेवी और दूसरा दुर्गा अथवा चण्डी। पहला रूप सौम्य और दूसरा उग्र है। इसकी प्रायः उग्र

रूप में ही अधिक पूजा होती है। गोस्वामीजी अपनी रामायण की कथा शिवजी के मुख से पार्वती को सुनवा रहे हैं। उनके शिव परम राम-भक्त हैं और राम परम शिव-भक्त हैं।

भुसुंडि=[काक-]भुशुंडि—राम चरित-मानस के उत्तर-काण्ड में गरुड़ के प्रश्न करने पर काक-भुशुंडि अपनी कथा सुनाते हैं। जब जब श्रीरामचन्द्रजी मनुष्यावतार लेते हैं मैं अयोध्या में उनकी बाल-लीला देखने जाता हूं और उनकी झूठन खाकर अपने आप को धन्य समझता हूं। वे मेरे साथ बच्चों की भाँति खेलते हैं। एक वार जब वे मेरे साथ खेल रहे थे तब मुझे संदेह हुआ कि यह साधारण बालक जो मेरे पास आ जाने से हँसता और उड़ जाने से रोता है कैसे चिदानन्द भगवान् हो सकता है। श्रीरामचन्द्रजी मेरे मन की अवस्था जान कर हँस पड़े और उन्होंने मुझे पकड़ने के लिये हाथ पसारा। मैं उड़ा और जहाँ जहाँ मैं गया वहां ही उन का हाथ मेरे पीछे गया। मैं ब्रह्म-लोक में गया और वहाँ भी वह हाथ मेरे पीछे केवल दो उंगुल के अंतर पर था। मैंने व्याकुल हो कर आँखें मूंद लीं। जब आँखें खोलीं तो अपने को फिर अवध-पुरी में पाया। मुझे संभ्रांत देख कर श्रीरामचन्द्रजी ज्यों ही हँसे मैं उन के मुख में घुस गया। अंदर जा कर मैंने अनेकों ब्रह्मांड, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चंद्र, आदि, देखे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में श्रीरामचन्द्रजी का अवतार और चरित्र देखे। इस प्रकार घूमते फिरते मानों मुझे सौ कल्प बीत गए, पर यह सब मैं ने दो घड़ी में देख लिया। मुझे व्याकुल देख कर प्रभुजी फिर हँसे और मैं बाहर निकल आया। प्रभुजी ने मेरे ऊपर कृपा कर के अपनी माया का प्रसार रोक लिया और मेरे सिर पर अपनी कृपा का हाथ फेर कर मुझे अपनी अविरल भक्ति का वर दिया। तब मैं प्रसन्न-चित्त अपने आश्रम में लौट आया।"

गरुड़ ने फिर पूछा कि आप ने काक-देह कैसे पाई और यह तुम्हें

क्यों रुचती है? भुशुंडिजी ने उत्तर दिया क्योंकि इसी देह में मेरे मन में श्रीरामचंद्रजी की भक्ति उमड़ी थी इस लिये मुझे यह देह प्रिय है। एक वार घोर कलियुग में अयोध्या के अंदर मैं शूद्र के घर में उत्पन्न हुआ। मैं बड़ा शिव-भक्त था, पर दूसरे देवताओं से द्वेष रखता था। देश में अकाल पड़ने से मैं उज्जयिनी में चला गया और वहाँ एक शिव-भक्त ब्राह्मण की सेवा करने लगा। मेरे गुरु दूसरे देवताओं से द्वेष नहीं रखते थे और मेरा स्वभाव जानकर मुझे समझाने लगे कि शिव-भक्ति का फल ही राम-भक्ति है और शिवजी स्वयं राम-भक्त हैं। यह सुन मैं आग बगूला हो गया और अपने गुरु से द्वेष रखने लगा। एक दिन मैं मंदिर में शिवजी का जप कर रहा था कि मेरे गुरुजी आ पहुँचे। मैंने उठ कर प्रणाम नहीं किया। इस अपमान से गुरुजी तो मेरे ऊपर रुष्ट न हुए, किंतु भगवान् शंभु ने आकाश-वाणी द्वारा मुझे शाप दिया, "जा दुष्ट, सांप बन कर वृक्ष के एक कोटर में बैठा रह और जन्म-मरण के दुःख सहता हुआ करोड़ों योनियों में घूमता फिर।" इस पर मेरे गुरुजीने शिव-स्तोत्र पढ़ कर भगवान् शंभु को संतुष्ट किया। तब शिवजी ने कहा कि मेरा शाप वृथा नहीं जाएगा पर भिन्न भिन्न योनियों में तुझे दुःख नहीं व्यापेगा और तेरा ज्ञान नष्ट नहीं होगा। जब तू अयोध्या में जन्म लेगा तो तुझे राम-भक्ति मिलेगी।" तत्पश्चात् एक पर्वत पर मैं साँप बन कर रहा। अनेकों योनियों को सुख-पूर्वक लांघता हुआ ब्राह्मण के घर जन्मा। पिता ने विद्या पढ़ाने की चेष्टा की पर मुझे राम-भक्ति के अतिरिक्त कुछ सूझता ही न था। पिता की मृत्यु के पश्चात् मैं मेरु-पर्वत की चोटी पर लोमश ऋषि के पास सगुण उपासना का रहस्य समझने गया। वे निर्गुण उपासक थे। वहां मेरा उन से वाद-विवाद हो गया और मैं उन के निर्गुणिये उपदेश को न ग्रहण कर अपने सगुण-पक्ष पर डटा रहा। इस पर उन्हों ने क्रुद्ध हो कर मुझे शाप दिया, "हे दुष्ट, तू कौए की भांति सत्य वचन पर विश्वास नहीं करता और बकवाद किये जाता है।

जा, तू कौआ बन जा।" मैंने हर्ष-पूर्वक उनका शाप ग्रहण किया और तुरंत कौआ बन गया। राम नाम का जप करते हुए मैंने गुरु के चरण छुए। इस पर लोमश ऋषि ने पश्चात्ताप करते हुए मुझे आश्वासन दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा, "हे तात, तुम सदा राम-प्रिय होवो, इच्छा-रूप-धारी बनो और मृत्यु पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार हो। तुम ज्ञान और विराग के निधान बनो।" आकाश से ब्रह्म-वाणि हुई "एवम् अस्तु"। मैं गद्गद हो कर इस आश्रम में चला आया। यहां रहते हुए मुझे अब सत्ताईस कल्प बीत गए हैं। मैं यहां राम-चरित का गान करता हूँ और सब पक्षी आ कर सुनते हैं। यही कारण है कि मुझे काक-देह प्यारी है।

मदन—कामदेव का नाम है। वेद के अन्दर 'काम' शब्द विषय-भोग अथवा प्रेम के अर्थों में नहीं आया। वहां तो इस का अर्थ साधारण कल्याण अथवा उपकार की कामना है। तैत्तिरीय-ब्राह्मण के अनुसार 'काम' के पिता 'धर्म-राज' हैं और माता 'श्रद्धा' है, किन्तु हरि-वंश में इसे लक्ष्मीजी का पुत्र कहा है। एक स्थान पर इसे ब्रह्माके मन से उत्पन्न हुआ कहा गया है, दूसरे स्थान पर इस की उत्पत्ति जल से बताई है और अन्यत्र इसे आत्म-भू भी माना गया है। इस की स्त्री का नाम रति है।

जब कैलाश पर्वत पर शिवजी लम्बी समाधि लगाए बैठे थे और हिमालय की बेटी पार्वती उनकी सेवा के लिये प्रतिदिन जाया करती थी तब कामदेव ने शिवजी के मन में पार्वती के लिये प्रेम उत्पन्न करने के लिये उनको अपने पुष्प-बाण का लक्ष्य किया। पर शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोल कर उसकी ज्वाला से कामदेव को भस्म कर दिया। फिर रति के विलाप से द्रवी-भूत होकर उसे वर दिया कि कामदेव फिर श्रीकृष्णजी के घर रुक्मिणीजी के गर्भ से उन के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में जन्म लेगा।

मंदोदरी—रावण की पत्नी और मय नाम के दैत्य की पुत्री। (देखो—**मय**)।

मय—जैसे विश्वकर्मा देवताओं का स्थपति था वैसे ही मय असुरों का स्थापति था। इस के पिता का नाम विप्रचित्ति था। यह मन्दोदरी का पिता था। और देहली के आस पास ही देव-गिरि में रहता था। यह दैत्यों और मनुष्यों दोनों के ही काम कर दिया करता था। महाभारत में लिखा है कि इसने पाण्डवों के लिये एक राज-भवन बनाया था।

अमेरिका में मय-सभ्यता के बहुत से भग्नावशेष मिले हैं। उन से प्रतीत होता कि उस सभ्यता के लोग वास्तु-विद्या में बड़े निपुण थे और बड़े विशाल, सुन्दर और शोभा-शाली भवन, राज-मार्ग तथा मंदिर आदि बनाने में अद्वितीय थे।

मरुत—ये वायु के देवता हैं। वेद में इनकी संख्या एक स्थान पर १८० और दूसरे पर केवल २७ बताई है। इन्हें भिन्न भिन्न स्थलों पर रुद्र का, इन्द्र का, समुद्र का, द्यौ का, और पृथिवी का पुत्र कहा गया है। ये इन्द्र के भाई, बन्धु और मित्र भी हैं। रामायण तथा पुराणों में इन्हें दिति का पुत्र कहा है और इन की संख्या सात अथवा सात गुणा सात अर्थात् उनचास बताई है। इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। जब दिति के ज्येष्ठ पुत्र असुरों को इन्द्र ने परास्त कर लिया तब दिति ने अपने पति कश्यप से कहा कि मेरे गर्भ से एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करो जो इन्द्र का ध्वंस कर दे। कश्यप ने ऐसे ही किया। किंतु जब इन्द्र को पता चला कि दिति के गर्भ में पुत्र है जो उस का नाश कर देगा तब उसने अपने वज्र से उस गर्भ के उनचास टुकड़े कर दिये। वे टुकड़े रोने और चिल्लाने लगे। तब दयार्द्र हो कर इन्द्र ने उन्हें जीवित कर के कहा "मा रोदीः" (मत रो)। इस से उनका नाम 'मरुत' पड़ गया और वे वायु के देवता कहलाए।

मेघ-नाद—देखो—'इन्द्रजित'।

मैनाक—एक पर्वत का नाम है। महाभारत में लिखा है कि यह कैलाश पर्वत के उत्तर की ओर है। इस का नाम मैनाक इस लिये पड़ा कि यह हिमालय द्वारा मेनका अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। जब इन्द्र ने सभी पर्वतों के पक्ष काट दिये थे तब यही एक पर्वत था जो बच रहा था। एक मत के अनुसार यह पर्वत मध्य प्रान्त में है और दूसरे मत अर्थात् तुलसी-रामायण आदि के अनुसार यह दक्षिण में कुमारी अंतरीप के पास है।

यक्ष—ये धन के देवता कुबेर के अनुचर हैं। ये बड़े सज्जन होते हैं और किसी को हानि नहीं पहुँचाते। इसी लिये इनका नाम पुण्य-जन भी है। कालिदास के मेघ-दूत में विरही यक्ष ने ही मेघ द्वारा अपना सन्देश अपनी प्रियतमा को भेजा था।

रावण—राक्षसों का राजा और यक्षों के राजा कुबेर का सौतेला भाई था। इसने कुबेर से लंका का राज्य और पुष्पक विमान छीन लिये थे। यह विश्रवस् का पुत्र था और पुलस्त्य ऋषि का पोता था। इसकी माता का नाम निकषा था, जो राक्षस सुमाली की बेटी थी। इसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं। तपस्या करके रावण ने ब्रह्मा से यह वर मांगा था कि देवताओं और असुरों से मैं न मारा जा सकूं। अभिमान में आकर इसने मनुष्यों और वनचरों से अवध्य होने का वर न मांगा। इसी कारण इसके बढ़ते हुए अत्याचारों को देखकर इसे मारने के लिये विष्णु भगवान् को मनुष्य अवतार धारण करके वानरों और रीछों की सहायता लेनी पड़ी। (देखो—**बाली** और **सहस्र-बाहु**)

रिषि-नारी—जे पद परसि तरी रिषि नारी। (पृष्ठ ५४)

यहां अभिप्राय गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या से है। ब्रह्मा ने नारियों में सब से प्रथम अहल्या की सृष्टि की और इसे

गौतम ऋषि की पत्नी बना दिया। यह बड़ी रूपवती थी। इन्द्र इस पर आसक्त हो गया। भोर के समय कुक्कुट बोलने पर गौतम ऋषि शौच, स्नानादि के लिये अपने आश्रम से चले जाते थे। एक रात इन्द्र ने चन्द्रमा की सहायता से अहल्या का सतीत्व भंग किया। चन्द्रमा ने कुक्कुट का रूप धारण करके आधी रात को ही कुक्कुड़ूँ कूँ कर दिया। गौतम ऋषि भोर का समय समझ कर आश्रम से चले गए और इन्द्र ने गौतम का रूप धारण करके अहल्या का सतीत्व नष्ट किया। कहते हैं कि अहल्या को इस छल का पता लग भी गया था, किन्तु वह चुप रही। जब इन्द्र आश्रमसे निकल कर जाने लगा, तब आगे से गौतम ऋषि मिल गए। भेद खुल जाने पर गौतम ने इन्द्र को शाप दिया कि उसके शरीर पर एक सहस्र योनियां बन जाएँ। इन्द्र की बड़ी दुर्दशा हुई और वह लज्जा के मारे कहीं आने जाने का न रहा। इस लिये उसने अनुनय-विनय कर गौतम से क्षमा मांगी। तब ऋषि ने उन सहस्र-योनियों को सहस्र आंखों में परिवर्तित कर दिया। चन्द्रमा को क्षय होने का शाप दिया और अहल्या को पत्थर बना दिया। पर फिर दया करके कह दिया कि जब विष्णु भगवान् राम के अवतार में तुझे पांव से छुएँगे तब तू पूर्ववत् अपना रूप पा लेगी।

लंका—यह भारतवर्ष के दक्षिण में एक द्वीप है, जिसे आजकल सीलोन कहते हैं। इसका नाम सिंहल-द्वीप भी है और यहां पर बोली जाने वाली भाषा का नाम सिंहली है जो पालि से निकली है। कुबेर के रहने के लिये लंकापुरी को विश्व-कर्मा ने स्वर्ण से बनाया था, किन्तु रावण ने उसे कुबेर से छीन लिया। भागवत पुराण में लिखा है कि पहले यह पुरी मेरु-पर्वत के शिखर पर स्थित थी पर उसे वायु देवता ने उखाड़ कर समुद्र में फेंक दिया था। तब से यह समुद्र में त्रिकूट पर्वत पर बस गई।

सहस-बाहु=सहस्र-बाहु। इसका नाम सहस्रार्जुन भी है। यह माहिष्मती के राजा कृतवीर्य का पुत्र था। इस की सहस्र बाहें थीं।

यह शिवजी का उपासक था। जब इसने लोभ-वश परशुराम के पिता जमदग्नि की गौ छीन ली, तब परशुराम ने इसे मार डाला। इस के सौ पुत्र थे जिन्होंने पिता की हत्या का प्रतिकार लेने के लिये जमदग्नि को मार डाला। तब परशुरामजी ने क्रुद्ध होकर इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया।

सहसबाहु सन परी लराई। (पृष्ठ २९)

एक बार रावण दिग्विजय के लिये घूमता हुआ एक नदी के तट पर संध्या करने लगा। इतने में नदी में अचानक बाढ़ आ गई और उसकी पूजा की सामग्री बहने लगी। जब देखा तो नदी का पानी उलटा बह रहा था। कारण जानने के लिये रावण नदी के नीचे की ओर बढ़ा। वहां सहस्रबाहु अपनी स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था और उसी ने अपनी बाहों से पानी रोक दिया था। स्त्रियों ने रावण को देखकर सहस्रबाहु से कहा, 'इस खिलौने को पकड़ लो, यह मनोरंजन की वस्तु होगी।' सहस्र-बाहु ने उसे पकड़ कर रनिवास में रख दिया। रावण बहुत छटपटाया, पर उसकी एक न चली। उसके सब अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो गए। रानियें उसके दस सिरों पर दिये जलातीं और बच्चे तालियां पीटते। इस प्रकार रावण की बड़ी दुर्दशा हुई। अंत में पुलस्त्य मुनि ने आकर सहस्रबाहु से रावण को छुड़ा दिया।

सागर—समुद्र का नाम सागर कैसे पड़ा इस विषय में एक बड़ी रोचक कथा है। अयोध्या के राजा बाहु को हैहयों और तालजंघों ने उसके अपने राज्य से निकाल दिया। बाहु अपनी पत्नियों सहित जंगल में चला गया। सगर माता के गर्भ में था। सपत्नी ने सगर की माता को एक प्रकार का विष खिला दिया जिस से बच्चा सात वर्ष तक गर्भ में ही अटका रहा। इतने में बाहु की मृत्यु हो गई और सगर की माता सती होने लगी। किंतु और्व ऋषि के कहने पर कि उस के गर्भ से शूर वीर चक्रवर्ती राजा जन्म लेगा वह रुक गई। बच्चा उत्पन्न होने पर

औौर्व ऋषि ने उसका नाम स-गर (विष-युक्त) रखा। बड़े होकर सगर ने हैहयों का समूल नाश करके अपने पिता का राज्य लौटा लिया। सगर की दो रानियां थीं—एक कश्यप की बेटी सुमति और दूसरी विदर्भ-राज की पुत्री केशिनी। जब इन दोनों के कोई संतान न हुई तो सगर ने और्व ऋषि से वर मांगा। उसने कहा कि एक रानी से एक पुत्र होगा और दूसरी से साठ सहस्र। केशिनी ने कहा मेरे एक ही पुत्र हो। तब सुमति के साठ सहस्र पुत्र हुए। केशिनी का पुत्र असमञ्जस् राज्य का उत्तराधिकारी निश्चित हुआ पर वह दुराचारी और इन्द्रिय-लोलुप था। इस लिये पिता ने उसे त्याग दिया। दूसरे साठ सहस्र पुत्र भी वैसे ही दुराचारी और लंपट निकले। सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया और यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिये अपने साठ सहस्र पुत्रों को नियुक्त किया। घोड़ा चोरी हो गया और सगर ने अपने पुत्रों को ढूंढ लाने का आदेश दिया। उन्होंने सारी पृथ्वी छान मारी पर घोड़ा न मिला। फिर उन्होंने पृथ्वी को खोद कर पाताल में ढूंढने का प्रयत्न किया। वहां उन्हें घोड़ा चरता हुआ मिल गया और देखा कि उसके पास ही कपिल मुनि समाधि लगाए बैठे हैं। सगर के पुत्रों ने कपिल मुनि को चोर समझ कर उन्हें धमकाया, पर ऋषि की दृष्टि पड़ते ही वे सारे भस्म हो गए। तत्पश्चात् असमञ्जस् के पुत्र अंशुमत् ने उन की राख हुई हड्डियों को देखा तब कपिल मुनि से प्रार्थना की कि उन की शुभ गति होकर वे स्वर्ग में जावें। कपिल मुनि ने प्रसन्न होकर कहा कि जब तुम्हारा पौत्र स्वर्ग से गङ्गाजी को लावेगा तब उस के जल के स्पर्श से इनकी शुभ गति हो जावेगी। तब अंशुमत् ने जाकर सगर को सारा वृत्तान्त सुनाया। सगर ने यज्ञ समाप्त किया और उसके पुत्रों ने पाताल में ढूंढने के लिये जो महान् गढ़ा खोदा था उसका नाम सागर रख दिया। अंशुमत् का पुत्र दिलीप और दिलीप के पुत्र भगीरथ और रघु हुए। भगीरथ ने स्वर्ग से गंगा को ला कर अपने साठ सहस्र पुरखाओं का कल्याण किया। इसी लिये गंगा का नाम

भागारथी है। यही दिलीप के पुत्र रघु श्रीरामचन्द्र जी के परदादा थे।

सारद=शारदा। सरस्वतीजी का नाम है। वेदों में सरस्वती नाम केवल एक नदी का है और वाणी की देवता वाग्-देवी कही गई है। किंतु ब्राह्मण-ग्रन्थों और महाभारत में सरस्वती और वाग्-देवी को एक बना दिया गया है। इनको ब्रह्माजी की पत्नी, विद्या की देवी, संस्कृत-वाणी और देव-नागरी लिपि की आविष्कर्त्री और शिल्प तथा कलाओं की अधिष्ठात्री माना गया है। इनका वर्ण श्वेत है और हाथों में वीणा और पुस्तक हैं। जल में कमल के ऊपर आसीन होकर वीणा बजा रही हैं और पास ही इनका वाहन हंस पानी में कलोलें कर रहा है।

बंगाल में प्रचलित आख्यानक के अनुसार पहले विष्णु भगवान् की तीन पत्नियां हुआ करती थीं—लक्ष्मी, गंगा और सरस्वती। इन में नित्य झगड़ा रहता था। इन के कलह से ऊब कर विष्णुजी ने सरस्वती तो ब्रह्मा जी को दे दी और गंगा शिवजी को। स्वयं लक्ष्मीजी को लेकर शान्ति से रहने लगे।

सिद्ध—ये बड़े पुण्यात्मा लोग है जो भू-लोक और सूर्य-लोक के बीचों बीच अन्तरिक्ष लोक में रहते हैं। इनकी संख्या ८८,००० है।

सुक=शुक। रावण का प्रधान दूत जो उसने विभीषण के पीछे भेजा था।

रिषि अगस्ति कै साप भवानी।
राछस भयेउ रहा मुनि ग्यानी। (पृष्ठ ७२)

शुक एक ज्ञानी मुनि थे। एक बा अगस्त्य मुनि उनके आश्रम में आए। शुक ने उनके भोजन का प्रवन्ध किया। जब ऋषि स्नान करने गये तो वज्रदन्त नाम का एक राक्षस, जिसकी शुक से लड़ाई थी अगस्त्य ऋषि का रूप धारण करके आया और उसने शुक से कहा कि हमको बकरे का मांस खिलाना। यह कह कर वह अन्तर्धान हो गया। तदनुसार शुकने

मांस पकवाया। जब अगस्त्य ऋषि खाने बैठे तब वज्रदन्त ने शुक मुनिकी स्त्री का रूप धारण करके उनके सामने मांस परोस दिया और स्वयं फिर अन्तर्धान हो गया। यह देख ऋषि ने शुक को शाप दिया कि राक्षस हो जा, पर जब शुक ने प्रार्थना की और अगस्त्य ऋषि को वास्तविक बात का पता लगा तो वे बोले—"हे शुक। मेरा शाप तो निष्फल न होगा, पर तू रावण के यहां सेवक बनेगा और जब श्रीरामचन्द्रजी उसे मारने आवेंगे तब उनके दर्शन से तेरा शाप छूट जायगा।"

सुंदर—एक पर्वत का नाम है। समुद्र पार करते समय हनुमानजी इसी पर्वत पर चढ़ कर कूदे थे। इसी घटना से इस काण्ड का नाम सुंदर-काण्ड पड़ गया है।

हनुमान—यह केसरी नाम के वानर की पत्नी अञ्जना के पेट से थे। किंतु पवन के द्वारा उड़ा कर लाए हुए शंकरजी के वीर्य से अञ्जना के गर्भ में से उत्पन्न हुए। इसी लिये इनको पवन-सुत, शंकर-सुवन, केसरी-नंदन और आञ्जनेय आदि नामों से पुकारा जाता है। इन्होंने उत्पन्न होते ही सूर्य को लाल फल समझ कर निगल लिया था और सारे संसार में अंधेरा छा जाने पर देवताओं की प्रार्थना से उसे छोड़ दिया था। लक्ष्मणजी के मेघ-नाद की शक्ति लग जाने पर इन्होंने हिमालय पर्वत से संजीवनी बूटी लाकर उनके प्राणों की रक्षा की थी। मार्ग में इन्होंने काल-नेमि दैत्य और सहस्रों गंधर्वों को मार डाला था। ये श्रीरामचंन्द्रजी के परम भक्त थे। कहते हैं कि जहां कहीं भी रामायण की कथा होती है वहां हनुमानजी कुत्ते आदि के रूप में उपस्थित होकर सुनते हैं। ये श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप से अमर हैं इनकी स्तुति में तुलसीदासजी का लिखा हुआ हनुमान-चालीसा सहस्रों हिन्दुओं का प्रातःसमय पाठ करने का ग्रन्थ है।

शब्द-कोष

(संस्कृत-तत्सम शब्द मोटे दिये गए हैं)

संज्ञाएँ

अकास—**आकाश**

अखारेन्ह—अखाड़ों में

अगिनि— **अग्नि**, आग

अघ—पाप

अंग—भाग, यहां पलड़ा (जो तकड़ी का एक भाग होता है)

अंग-भंग—अंगों का तोड़ना

अज—बकरा

अ-ज—ब्रह्म

अटारी—ऊपर की छत

अट्ट-हास—खिलखिला कर ऊंचा शब्द करके हंसना, ऊंची हंसी

अंड-कोस—**अण्ड-कोष**, ब्रह्माण्ड

अधम—नीच

अधारा—**आधार**, आश्रय

अनल—अग्नि

अन-हित—**अ-हित**, शत्रु

अ-नीती—अ-न्याय, पाप, अत्याचार

अनुग्रह—कृपा

अनुचरी—दासी

अनु-ज — छोटा भाई

अनुसासन—**अनुशासन**, आज्ञा

अपमाना—निरादर

अपवर्ग—परलोक, मोक्ष

अंबुज—कमल

अवगुन—अपराध, दोष

अवग्या—**अवज्ञा**, निरादर

अवनि—पृथ्वी

अवसरु—**अवसर**, समय

अ-सगुन—**अ-शकुन**, बुरा लक्षण

असि—तलवार

असुर—दैत्य, राक्षस

अस्तुति—**स्तुति**, प्रशंसा

अहारा—**आहार**, भोजन

अहि—सांप

अ-हित—बुरा, हानि, शत्रु

अहि-पति—शेष-नाग

आगी—**अग्नि**, आग

आचरनु—**आचरण**, चरित्र, कार्य

आनन—मुख

आना—सौगंद, शपथ, आन
आयसु—**आदेश**, आज्ञा
आयुध— अस्त्र, शस्त्र
आरति—**आर्ति**, दुःख
आस—**आशा**
आसिष—**आशिष्**, असीस
इतिहास—समाचार, वृत्तान्त
ईसा—**ईश**, शिव
उतकरष—**उत्कर्ष**, बड़ाई
उद-धि—समुद्र
उपवन—उद्यान, फुलवाड़ी
उपाइ—**उपाय**, युक्ति
उबारा—बचाव
उर—**उरस्**, हृदय
उर-ग—साँप
उलूक—उल्लू
ऊसर—**ऊषर**, बंजर भूमि
ओट—रोक, आड़
कटकु—**कटक**, सेना
कटि—कमर
कदराई—**कादर्य**, कातरता, भीरुता
कदरी—**कदली**, केले का पेड़
कनक—सोना, स्वर्ण
कनक-थार—सोने का बना हुआ थाल
कंद—भूमि के नीचे जड़ के शाक
कपाट—किवाड़
कपिंदा—**कपीन्द्र**, श्रेष्ठ बंदर
कमठ-पृष्ठ—कछुए की पीठ
कर—हाथ, सूँड
करष—**कर्ष**, विरोध
करि-कर—हाथी की सूँड
कलप—**कल्प**, युग
काजु—**कार्य**, काम
कानन—वन
काम-रूप—इच्छानुसार रूप धारण करने वाला
कारन-मनुज—किसी कारण वश मनुष्य शरीर धारण करने वाला
काल-निसा—**काल-निशा**, प्रलय की रात
काल-राति—मृत्यु की रात्री
किसलय—पत्ता
कीती—**कीर्ति**, यश
कीसा—**कपीश**, बंदरों का प्रभु
कुठाहर—बुरा स्थान
कु-धर—पहाड़
कुंत—भाला
कुबलय—**कुवलय**, कँवल
कुमारा—**कुमार**, पुत्र
कुरंग—हरिण
कुसलाई—कुशलता
कुसलाता—**कुशलता**
कूप—कुआँ
कृपाना—**कृपाणु**, तलवार
कृसानू—**कृशानु**, आग
केहरि-नाद—**केसरि-नाद**, सिंह की दहाड़

कोट—परकोटा, प्राकार, नगर की [भित्ति
कोदंड—धनुष
कौतुक—खेल
क्रम—**कर्म**, क्रिया
खग—पक्षी
खगेस—**खगेश**, गरुड़
खद्योत—जुगनू
खर—गधा
खरारी—खर राक्षस का शत्रु, राम
खर्पर—खप्पर, (कछुए की) पीठ
खल-मंडली—दुष्टों का समूह
खोरि—दोष
गगन—आकाश
गगन-चर—आकाश में उड़ने वाला, [पक्षी
गज—हाथी
गरल—विष
गवनु—**गमन**, चलना, जाना
गाता—**गात्र**, शरीर
गिरा—वाणी
गिरि—पर्वत
गिरि-जा—पर्वत की बेटी, पार्वती
गुन-ग्राम—गुणों का समूह
गौरीसा—**गौरीश**, शिव
ग्रसन—खाना
घरनी— **गृहिणी**, स्त्री, पत्नी
चउहट्ट—चौराहा
चंचरीक—भ्रमर

चाप—धनुष
चीन्हा—**चिह्न**, संकेत
चूड़ा-मनि—**चूडा-मणि**, सिर का [रत्न-मय आभूषण
छन—**क्षण**
छिद्र—पाप, दुर्बलता
छोहू—प्रेम
जतनु—**यत्न**, उद्योग
जनि—**जन**, व्यक्ति
जव—**यव**, जौ
जल-जाता—**जल-जात**, कमल
जल-जान—**जल-यान**, नाव, पोत
जल-धि—समुद्र
जसु—**यशस्**, कीर्त्ति
जातु-धान—**यातु-धान**, राक्षस
जुगल—**युगल**, जोड़ा
जुगुति—**युक्ति**, उपाय
जुव-राज—**युव-राज**, राज-कुमार
जूथ—**यूथ**, सेना, झुंड
जूथ-प—**यूथ-प**, सेना-पति
जोजन—**योजन**, चार कोस
झष—मछली
झारि—समूह
टेक—हठ
तत्त्व—सार
तनय—पुत्र
तनु—शरीर
तम—**तमस्**, अंधेरा

तमी—रात्रि
तरक—**तर्क**, युक्ति, विचार
तरु—वृक्ष, पेड़
तरु-पल्लव—वृक्ष का पत्ता
तुला—तकड़ी
तूल—रुई
तृन—**तृण**, तिनका
त्रासा—**त्रास**, भय
दनु-ज—दैत्य, राक्षस
दरसु—**दर्श**, दर्शन
दर्भ—घास, दूब
दसन—**दशन**, दाँत
दसा—**दशा**, अवस्था, दृश्य
दाम—**दामन्**, माला
दारा—**दार**, भार्या, स्त्री
दिन-कर—सूर्य
दिवस—दिन
दुराऊ—छिपाव, छद्म-वेष
दुर्ग—कोट, गढ़
दुर्बाद—गाली
दुलार—वात्सल्य, स्नेह
दैव—भाग्य, विधाता
दोहाई—शपथ, सौगंद
द्रोही—वैरी, शत्रु
द्विज—ब्राह्मण, जिस का जन्म दो [बार हो
द्वेष—शत्रुता
धरनि—**धरणि**, पृथ्वी

धारा—धार, तीक्ष्णता
धारि—समूह, प्रवाह
धुनि—**ध्वनि**, शब्द
धूरि—**धूलि**, मिट्टी
धेनु—गाय
नभ—**नभस्**, आकाश
नर-नाहा—**नर-नाथ**, प्रभु, राजा
नर-हरी—नृ-सिंह अवतार धारी [राम
नलिनी—कमलिनी, कमल
नाग—हाथी, साँप
नासा—नाक
नासिका—नाक
निकर—समूह, झुंड
निकाया—**निकाय**, समूह
निकेता—**निकेत**, घर, सदन, धाम
निगम—वेद
निठुराई—**नैष्ठुर्य**, क्रूरता
निदाना—अन्त
निधन—मृत्यु
निधान—भंडार, निधि
निमिष—**निमेष**, आंख की झपक
निसि—**निशि**, रात
निसि-जामा—रात के पहर
निहोरा—प्रार्थना, मनुहार
नेम—**नियम**, व्रत
नेह—**स्नेह**, प्यार
पंक-ज—कमल

पच्छ—**पक्ष**, पासा, पंख
पद-कंज—चरण-कमल [सेना
पदचर—पैदल चलने वाला, पदाति
पदुम—**पद्म**, संख्या का नाम
पन—**प्रण**, वचन
पंथ—**पथ**, मार्ग
पयाना—**प्रयाण**, प्रस्थान, गमन
पयो-धि—समुद्र
परितापं—संताप, दुःख
परिवारा—कुटुंब
पाती—**पत्री**, पत्र
पाथो-धि—समुद्र
पादुकन्हि—**पादुका**, खड़ाऊँ पर
पानि—**पाणि**, हाथ
पावक—अग्नि
पाहरू—पहरा देने वाला
पिसाचिनि—**पिशाचिनी**, राक्षसी
पीरा—**पीडा**, दुःख
पुलक—सिहरन, रोमांच
पुलकावलि—रोम-पंक्ति, रोमांच
पैसार—प्रवेश
पौरुष—सामर्थ्य, शक्ति
प्रकृति—स्वभाव [उपकार
प्रति-उपकार—उपकार के पलटे
प्रभंजन-जाया—वायु का पुत्र, [हनुमान्
प्रयास—कष्ट
प्रस्थिति—प्रसंग, ब्योरा

फटक-सिला—**स्फटिक-शिला**
बंस—**वंश**, कुल
बदन—**वदन**, मुख
बध—**वध**, हत्या, मारा जाना
बयरु—**वैर**, शत्रुता
बरन—**वर्ण**, रंग
बरषि—वर्षा ऋतु
बरुथ—**वरूथ**, समूह, झुंड
बलिहारी—न्योछावर
बसन—**वसन**, वस्त्र, कपड़ा
बाग बिलासा—**वाग्-विलास**, बकवास, बड़, डींग
बाजि—**वाजिन्**, घोड़ा
बाट—**वर्त्मन्**, मार्ग
बाटिका—बाड़ी, फुलवाड़ी
बाधा—भय, डर, रुकावट
बारि—**वारि**, जल, आँसू
बिजय-बिभूति—जय-लक्ष्मी
बिटप—**विटप**, वृक्ष
बिपनि—**विपनि**, वन, वाटिका
बिपुलाई—**वैपुल्य**, विस्तार
बिप्र—**विप्र**, ब्राह्मण
बिबेका—**विवेक**, समझ
बिभूति—वैभव, श्री [वैराग्य
बिरति—**विरति**, निष्पक्षता,
बिरहागी—वियोग की आग
बिरुद—यश

बिलंबु—**विलम्ब**, चिर
बिषाद—दुःख, शोक
बिषाना—**विषाण**, सींग
बिसमय—**विस्मय**, आश्चर्य
बिसिख—**विशिख**, बाण
बेनी—वेणी, गुत, लट, चोटी
बैद—**वैद्य**
ब्याल—**व्याल**, सांप
ब्राता—**व्रात**, समूह
भट—योद्धा, सैनिक
भव—संसार, संसार के दुःख
भाथा—तूणीर, तरकश
भानु—सूर्य
भुज—बाँह
भुवनेश्वर—विश्व का स्वामी, [परमात्मा
भूत-द्रोह—प्राणियों से द्वेष
भू-धर—पर्वत
भू-पाल—राजा
भृ-कुटि—**भ्रु-कुटि**, त्योरी, भौं
भृंग—भँवरा
भेक—मेंडक
भेद—रहस्य, फूट, विरोध
भ्रम—भूल
मकर—मगर मच्छ
मचलाई—हठ
मति-भ्रम—बुद्धि का फेर
मत्सर—ईर्ष्या, डाह

मनुसाई—**मानुष्य**, वीरता, पौरुष
मंत्र—परामर्श, संमति
ममता—अभिमान, स्नेह
मयंका—**मयङ्क**, चन्द्र
मरजादा—**मर्यादा**, सीमा, नियम
मरमु—**मर्म**, भेद, रहस्य
मरुत—वायु
मर्कट—बन्दर
मसक—**मशक**, मच्छर
महि—**मही**, भूमि
महिमा—गौरव, महत्ता
महिष—भैंसा
माया—छल, जादू की शक्ति
माल—**मल्ल**, पहलवान
मीन—मछली
मुखागर—वाचक, मुँह से संदेश
मुठिका—**मुष्टिका**, घूँसा, मुक्का
मुदरी—**मुद्रिका**, अँगूठी
मुरुछा—**मूर्छा**
मुष्टि-प्रहार—मुक्के की मार
मृग—हरिण, पशु
रचना—काम, कार्य
रच्छक—**रक्षक**, रखवाला
रजनी-चर—राक्षस, रात को फिरने
रति—प्रेम, भक्ति [वाला
रबि—**रवि**, सूर्य
रहनि—रहने का ढंग

राऊ—राजा
राग—प्रेम
राजिव—**राजीव**, कमल
रामानुज—लक्ष्मण
रामायुध—राम का अस्त्र, धनुष-बाण
रिपु—शत्रु
रिषि—**ऋषि**
रिस—क्रोध
रुधिर—रक्त, लहू
रूखा—**वृक्ष**, पेड़
रोसा—**रोष**, क्रोध
लघु-तापस—छोटा भिखारी, लक्ष्मण
लव—अंश मात्र, थोड़ा सा
लव-लेस—लेश-मात्र, थोड़ा सा
लिलारु—**ललाट**, मस्तक, मुख
विकासा—**विकास**, खिलना
श्रम—थकावट
श्रवन—**श्रवण**, कान
श्रुति—वेद
श्रेणी—**श्रेणी**, समूह
सखा—मित्र
सगुन—**शकुन**, शुभ लक्षण,
संका—**शङ्का**, भय
सचिव—मन्त्री
संदेसु—**संदेश**, सँदेसा
सपथ—**शपथ**, सौगंद
समर—युद्ध
समीरा—**समीर**, वायु, पवन
संबाद—संभाषण, बात चीत
सर—**शर**, तीर, बाण
सर—**सरस्**, तालाब, झील
सरनाई—**शरण**
सरानल—**शरानल**, बाण रूपी अग्नि
सरासन—**शरासन**, धनुष
सरोज—कमल
सरित—**सरित्**, नदी
सर्प-राज—शेष-नाग
ससि—**शशिन्**, चाँद
सहसानन—सहस्र मुखों वाला, शेष-नाग
सहिदानी—चिह्न
साखा-मृग—**शाखा-मृग**, बन्दर
साम—शान्ति, अनुनय-विनय
सायक—बाण
सिख—**शिक्षा**
सींत-निसा—**शीत-निशा**, सर्दी की रात
सु-अवसरु—**स्ववसर**, अच्छा समय
सुजसु—**सुयशस्**, कीर्त्ति
सुत—पुत्र, बेटा
सुधा—अमृत
सुधि—ज्ञान, समाचार
सुबट—**सुवर्त्मन्**, सुंदर मार्ग
सुमन—**सुमनस्**, पुष्प, फूल
सुमन-वृष्टि—पुष्प-वर्षा
सुरति—**स्मृति**, सुधि, स्मरण

सैल—**शैल**, पर्वत, पहाड़
सोका—**शोक**
सोम—चांद
हट्ट—बाज़ार
हर—शिव [नगर, लंका
हाटक-पुर—सोने का बना हुआ

विशेषण

अ-खंड—संपूर्ण, पूरा
अ-खिल—सारा
अ-गम—पहुँच से बाहर [पुंज,पापी
अघ-रासी—**अघ-राशि**, पाप का
अंकित—खुदा हुआ,चित्रित, लिखित
अ-चल—अ-टल, सदा के लिये
अ-जय—जो जीता न जा सके
अ-जर—बूढ़ा न होने वाला
अ-जित—अजेय, जो जीता न जाए
अतिसय—**अतिशय**, बहुत
अ-तुलित—अनुपम, अ-द्वितीय
अधिकाई—बड़ाई [असीम
अनन्ता—जिसका अन्त नहीं,
अनपायिनी—न नाश होने वाली,
अनादि—आरंभ-रहित [अटल
अनामय—विकार-रहित, नाश-
अनिर्वाच्य—वर्णन से बाहर [रहित
अनुकूल—दयालु
अनुरागी—अनुरक्त, प्रेमी
अनुरूप—अनुकूल, अनुसार
अंतरजामी—**अन्तर्यामिन्**, मन की समझने वाला, जिसका मन पर पूरा अधिकार है [सके
अ-पेल—अ-टल, जो टाली न जा
अ-मित—अनेक, अनुपम, अद्वितीय
अ-मोघ—अ-चूक
अरुन—**अरुण**, लाल
अलप—**अल्प**, थोड़ा
अ-संका—**अ-शङ्क**, निडर
आयत—लंबा चौड़ा, विस्तृत
आयू-हीन—मृत्यु के निकट
आरूढ़—चढ़ा हुआ [वाला
इच्छा-चारी—जहां जी चाहे चलने
उजागर—प्रकाशित करने वाला
उतंग—**उत्तुङ्ग**, ऊंचा
उदार—बड़ा
उदासी—**उदासीन**, विरक्त
उरिन—**उऋण**, ऋण से मुक्त
ऊना—थोड़ा, छोटा
कंजारुन—कमल के समान लाल
कलि-मल-हर—कलियुग के दोषों और मैल को दूर करने वाला
काँचा—कच्चा, डरपोक, दुर्बल
कादर—**कातर**, डरपोक, भीरु

कुल-घाती— अपने कुल का नाशक
कुलीना—अच्छी कुल में उत्पन्न
कृत-कृत्य—सफल
कृपा-निकेत—कृपालु, कृपा का धाम
कृपिन—**कृपण**, कंजूस, नीच, छोटे मन वाला
कृस—**कृश**, दुबला
कोटि—करोड़
खंडित—टूटी हुई, कटी हुई
खल—दुष्ट
खिसिआन—क्रोध में भरा
खीसा—नष्ट
गद-गद—**गद्-गद**, भाव से द्रवित
गंभीर—गहिरा
गिरि-पादप-धारी—पर्वत और वृक्षों को लिये हुए
ग्यानी—**ज्ञानी**
घना—दृढ़
घनेरी—बहुत, अधिक
घालक—नाश करने वाला
घोरा—**घोर**, भयानक
चकित—घबराया हुआ, विस्मित
चराचर—जड़ और जंगम प्राणी
चारु—सुंदर
छबि-धाम—सौंदर्य का धाम, अति सुंदर
जड़—मूर्ख
तनु-धारी—शरीर-धारी
तरुन—**तरुण**, बहुत, खूप, गाढ़
तामस—तमो-गुण वाला, पापी
तूल—**तुल्य**, समान
त्राता—बचाने वाला
दमन-बिषाद—शोक को नाश करने वाला
दारुन—भयानक
दुसह—**दुःसह**, जो सहा न जाए
दुस्तर—पार करने में कठिन
नगन—**नग्न**, नंगा
नय-नागर—नीति-निपुण
नवल—नया
नागर—चतुर, सभ्य (नगर में रहने वाला)
निर्भर—बहुत
निसित—**निशित**, तीखी
नीकि—अच्छी
नीति-बिभूषन—नीति का आभूषण, नीति में चतुर
नूतन—नया, सजरा
पच्छ-जुत—**पक्ष-युत**, पंखों वाला
परम—बहुत, अधिक
पर-हित-निरत—परोपकार में लीन, दूसरे की भलाई करने वाला
परुष—कठोर
पावक-मय—अग्नि का बना हुआ
पावन-कारी—पवित्र करने वाला
पावनी—पवित्र
पाँवर—**पामर**, नीच, अधम
पुलकित—रोमांच-युक्त, प्रसन्न
पूरन-कामा—अभिलाषा पूरी करने वाला
पोच—नीच

प्रतिकूला—उलटा [करने वाला
प्रनत-पाल—भक्तों की पालना
प्रनतारति-हरना—भक्तों के दुःख
प्रलंब—लम्बी [दूर करने वाला
प्रवान—**प्रमाण**, सच्चा, दृढ़
बंका—**वक्र, सुंदर**, विशाल, बाँका
बच्छल—**वत्सल,** प्यार करने
बाम—**वाम,** बायां [वाला, स्नेही
बिकट—भयानक
बिकटानन—डरावने मुख वाला
बिख्याता—प्रसिद्ध
बिगत—शून्य, हीन
बिजई—**विजयी,** जीतने वाला
बिदित—प्रसिद्ध, विख्यात
बिनई—**विनयी,** नम्र, विनीत
बिनीता—**विनीत**, नम्र, विनय-भरे
बिपरीता—उलटा, विरुद्ध
बिपुल—बहुत संख्या में
बि-रथ—रथ के बिना [से उत्पन्न
बिरह-अनल-संजातं—विरह अग्नि
बिसाल—**विशाल,** बड़ा [बहुत
बिसेषा (°षी)—**विशेष,** अधिक,
बिस्व-द्रोह-कृत—सारे संसार से
बिहाला—व्याकुल [द्वेष रखने का
भंजन—तोड़ने वाला, नाश करने
भीरु—डरपोक [वाला
भूरि—बहुत

मति-धीरा—दृढ़ मन वाला
मनि-कृत—हीरों से बना हुआ
मंद—डरावना, बुरा, कुरूप
ममता-रत—ममता में फँसा हुआ,
मष्ट—चुप [स्वार्थी
मुंडित—मुँडा हुआ
मुरुछित—**मूर्च्छित**
मृदुल—कोमल
मोचन—दूर करने वाला
रंजन—प्रसन्न करने वाला
रन-धीरा—**रण-धीर**, युद्ध में
स्थिर, डटकर लड़ने वाला
राजिव-नैना—**राजीव-नयन**,
कमल के समान नेत्रों वाला
रुचिर—सुन्दर
लघु—छोटा
लीन—लगा हुआ, मग्न, डूबा हुआ
श्रम-हारी—थकावट दूर करने वाला
संसय-समन—**संशय-शमन**, सं-
देह दूर करने वाला
स-गुन—गुणी अथवा परमात्मा का
शारीरिक रूप, साकार ब्रह्म
संकुल—भरा हुआ
स-जल—जल (आँसू) से भरा हुआ
संजातं—उत्पन्न हुआ
सठ—**शठ**, दुष्ट
सत—**शत**, सौ

सत्य-संकल्प—सच्चे या दृढ़ निश्चय वाला
सब-रहित—सब से अलग
सभीत—भीरु, डरपोक, भय-भीत
सम—समान, तुल्य; **शम**, शान्ति
सम-दरसी—**सम-दर्शी**, सब पर समान दृष्टि रखने वाला, सब को एक सा देखने वाला
संमत—अनुकूल, मानी हुई
सरल—सीधी, निष्कपट
सरिसा—**सदृश**, समान
सर्बग्य—**सर्वज्ञ**, सब कुछ जानने वाला
सर्व-रूप—सभी रूप धारण करने में समर्थ, अनन्त रूपों वाला
स-संका—**स-शंक**, भय-भीत
सह-ज—प्राकृतिक, स्वाभाविक
सहस—**सहस्र**
सानी—भरी हुई, सनी हुई
सारिखे—**सदृश**, जैसे, सदृश, समान
सावधान—एकाग्र
सु-कुमारी—कोमलांगी
सुकृपा-निकेता—दया का घर, दयालु
सुख-अयना—सुख का धाम
सुख-कंदा—सुख का मूल
सुखारी—सुखी मन वाला, सत्पुरुष
सुठि-मना—**सुष्ठु-मनाः**, अच्छे
सुंदरायत—सुंदर और लंबा चौड़ा
सुर-त्राता—देवताओं का रक्षक
सूल-प्रद—दुःख देने वाला
सेव्य—**सेव्य**, सेवा करने योग्य
सोषक—**शोषक**, सुखाने वाला
स्याम—**श्याम**, साँवला, काला,
स्यामल—**श्यामल**, साँवला नीला
हत-भागी—फूटे भाग्य वाली
हीना—नीच, अधम

क्रियाएँ

अइहहिं—आएँगे
अहई—है
आनहु—ले आओ, लाओ
आनिअ—**आ √नी**, ले आएँ
आनिबी—लाई जाए
आनु—लाओ
आनेहि—लाया था
आयेउँ—आया हूँ
आही—है
कटकटाहिं—दांतों को बजाते थे
करिहहिं—करेंगे
काटहिं—काट देते हैं
काटिहउँ—काट दूँगा
गनइ—गिने
गनहीं—गिनते हैं, समझते हैं
गयेउ—गया

गँवनेउ—चला गया
गहई—पकड़ लेती थी
गाइअ—गाया जाए
गैहहिं—गाएँगे
ग्रससि—√ग्रस्, खा जाती
घालेसि—किया
घालेहि—किया
चिक्करहीं—चिघाड़ने लगे
चितइ—देखने लगा
चितव—देखती रही
छमहु—क्षमा करो
जाव—जाऊँगा
जिअसि—तू जीता है
जिअहिं—जी जाएँ, जीते रहेंगे
जितेहु—तूने जीत लिया है
जुड़ावहु—ठंडी करो
ठयेऊ—हो गया
डगमगाहिं—डगमगाने लगे, हिलने लगे
डेराई—डरता है
डोल—हिलने लगी
तरकेउ—कूदा
तरिअ—पार किया जाए
तर्जहीं—√तर्ज्, धमकाते थे
तिष्ठइ—तिष्ठति, बच सकता
त्रासहु—डराओ
दहेउ—जलाया था
देखिअत—दिखाई देते हैं

धरहिं—धारण करने लगीं
धरिअ—√धृ, रखा जाए
नव—√नम्, झुकता है
नाइअ—झुकाना चाहिये
नाएसि—वह झुकाता था
नासहिं—नाश हो जाते हैं
निबहै—निभ सकता है
पठइअ—भेजा जाए
पठइन्हि—भेजा
परिखेहु—प्रतीक्षा करना
परिहरहू—छोड़ो, दूर करो
पूरहिं—भर दें, पाट दें
पैठिहउँ—घुस जाऊँगा
पैठेउ—घुस गया
पैहहिं—पा जाएंगे, पा लेंगे
फरइ—फलता है, फल देता है
बखानहिं—बड़ाई करने लगे
बँधाइअ—बँधाइये, बँधाया जाए
बहसि—वहसि, धारण करती है
बाँचु—पढ़
बाजहिं—बजाने लगे
बाढ़ी—बढ़ी
बाँधसु—बाँध लेना
बिरचति—बनाती है
बिलोकिहउँ—देखूँगा
बिसरि गा—भूल गया
बूझेसि—पूछा

बोलि पठाइ—बुला भेजी
ब्याप—घेरते, व्यापते
भच्छहीं—√भक्ष्, खा रहे थे
भिरहिं—लड़ते थे
मर्दैसि—√मृद्, मसल डाला
मिलएसि—मिला दिया
मिलवहिं—मिला दें
मींजहिं—मीचते थे
मोहई—मूर्छित हो जाता था
लहई—√लभ्, लेता है, पाता है
लेवाइ जाऊँ—उठा ले जाउं
संधानेउ—जोड़ा, लगाया, चढ़ाया
सराहहिं—प्रशंसा करने लगे
सुमिरु—स्मरण कर
सोषिअ—सुखा दिया जाए
सोह—√शुभ्, शोभा देती
स्रवहिं—बहाते हैं
हतेउ—मारा था
हनइ—मार सकता है
हर—काटे, दूर करे
हरत—संहार करते हैं
हरष—प्रसन्न हो गए
हरु—दूर कर
होइहि—होगा

कृदंत

अकुलानी—व्याकुल हुई
अघात—तृप्त होता था
अंकित—लिखा हुआ
अधिकाई—बढ़ा कर
अनुमानि—समझ कर
आनि—ला कर
आरूढ़—चढ़ा हुआ
उएँ—उदय होने पर
उठब—उठना
उपारा—उखाड़ा
कटकटाइ—दाँत बजा कर, दाँत पीस कर
करैं—करने
काढ़ि—निकाल कर
कृत—किया, बना हुआ
खंडित—कटी हुई, टूटी हुई
खरभरे—खलबलाने लगे
खिसिआना—खीझा, क्रुद्ध हुआ
गंजा—चूर्ण किया, कुचल दिया
गहत—पकड़ना चाहता है
गहि—पकड़ कर
ग्रसत—खा लेता
चितवा—देखा
चीन्हा—पहचान लिया
जंत्रित—**यन्त्रित,** जकड़े हुए, ताला लगे हुए
जरत—जलते हुए
जरे—जले हुए

जिअत—जीती हुई
जिआवा—जिलाया हुआ, पाला हुआ
टरे—टल गए, दूर हो गए
ठठुकि—ठिठक कर, स्तब्ध होकर
ठाढ़—खड़ा
ठाढ़ी—खड़ी हो गई
ठानी—बांध ली, की
डसाई—बिछा कर
डारे—गिरा दिये
ढनमनी—लुढ़क गई
तकि—देखकर, ताक कर
तर्जा—डराया, ललकारा [हुई
तलफत—तड़पती हुई, छटपटाती
दुखारी—दुःखी [कर के
दृढ़ाई—पक्के समझ कर, विश्वास
धरि—रख कर, धारण करके
धाइ—दौड़ कर
धावा—दौड़ा
नसावन—नष्ट करने वाला
नाइ—झुका कर
नाँघि—लाँघ कर
नावा—झुकाया
निदरी—निरादर करके
निपाति—गिरा कर
निबुकि—कूद कर
निरखि—देख कर
निसरत—निकलते हुए
पइठि—घुस कर
पठाई—भेजी
पठावा—**प्रस्थापित**, भेजा
परतिहुँ—गिरते हुए, गिरते गिरते
परसा—**√स्पृश्**, छुआ
पसारा—**प्रसारित**, फैलाया
पागी—**पक्व**, सना हुआ, भरा हुआ
पालित—रक्षित, पालन की गई
प्रजारी—जला दी
प्रबिसि—प्रवेश करके [हुआ
प्रेरित—प्रेरणा किया हुआ, चलाया
फरकि—फरक कर
फिरि—घूमकर, मुँह फेर कर, [लौट कर
बएँ—बोने पर
बखानी—व्याख्या करके, स्पष्ट [खोलकर
बँचाइ—पढ़ा कर
बटोरी—इकट्ठा करके
बधि—मार कर
बनावा—बनाया
बमत—उगलती हुई
बरजत—हटाने, हटकने
बरनत—वर्णन करते हुए
बरषी—बरसा कर
बहरावा—बहरे के समान बन गया
बाजा—भिड़ा, लड़ने लगा
बाढ़ी—बढ़ा दी
बिचारी—विचार कर, समझ कर

विराजा—छाया हुआ है
विलोकत—ताक रहे थे, देख रहे
बिसारी—भूल कर [थे, देखते हुए
बिहँसा—हँसा
बुझाई—समझा कर
बूड़त—डूबते हुए
बठारी—बिठा कर
बोरि—डुबा कर
भंजा—तोड़ा [जूझे
भिरे—भिड़े, गुत्थम-गुत्था हुए,
भूषन-भूषित—गहनों से सजी हुई
भेंटे—मिले [रगड़ २ कर
मर्दि मर्दि—मसल मसल कर,
मुंडित—मुंडा हुआ
रिझाइ—प्रसन्न कर, संतुष्ट कर
रिसाई—क्रोध में भर कर
रिसाना—क्रोध से भर गया
रोपी—लगा कर
लगि—लगा कर लेकर, तक
लाई—लगा कर

संकुचि—संकोच करते हुए, लज्जा
संघारे—मार गए, मार डाले [कर
संजातं—उत्पन्न हुआ
सँभारी—सँभाल कर, ध्यान करके
सयन किये—सोए हुए [स्मरण करके
साधा—सज्जित किया
सानी—भरी हुई
सारा—लगा दिया
सिधारी—चल दी, चली गई
सिधावा—चला गया
सिरिजा—बनाया, उत्पन्न किया
सुमिरि—स्मरण करके, भज कर
सुहावा—शोभायमान, सुन्दर
सृजत—उत्पन्न करते हैं
सेइ—सेवा करके
सोधा—ढूँढा, खोज डाला
स्रवत—बरसाता, बहाता
हनत—मारते ही
हनी—मारा, मारी
हरषि—प्रसन्न होकर

अव्यय

अति—बहुत
अतिसय—**अतिशय**, बहुत
अनुमान—अनुसार
अरु—और
इव—समान, भाँति

एवमस्तु—ऐसे ही हो
ओरा—दिशा में
कर—का
काहे—किस लिये, क्यों
कि—क्या, कहीं, अथवा

किमि—कैसे
की—या, अथवा, क्या
जथा—**यथा**, जैसे
जथा-मति—बुद्धि के अनुसार
जदपि—**यद्यपि**
जनि—मत, नहीं
जनु—जानो, मानो
जस-जस—जैसे जैसे
जहवाँ—जहाँ
जौं—यदि
जौं पै—यदि
ढिग—पास
तहवाँ—वहाँ
तें—से
त्राहि—रक्षा करो
न-त—नहीं तो
नाईं—समान, भाँति
निपट—सर्वथा
निरंतर—लगातार, अखण्ड
नेरी—निकट
पहिं—पास, में
पाहीं—पास
पुनि—**पुनः**, फिर
प्रति—एक एक
बड़ भल—अच्छा
बहोरि—फिर
बेगि—शीघ्र
भरि—के बराबर, तक
मनहुँ—मानो
रहसि—अकेले में, एकान्त में
स-कोप—क्रोध में
सद्य—झट पट
सन—साथ
सनमुख—**संमुख**, सामने
संतत—लगातार, नित्य
सपदि—झट पट
सादर—संमान के साथ
हठि—बलात्, हठ-पूर्वक, अवश्य